ईशावास्योपनिषद्

(शाङ्कर भाष्य, सारस्वती व्याख्या आंग्ल अनुवाद, पद्यानुवाद,
शान्तिपाठ एवं शिवसंकल्प सहित)

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

ईशावास्योपनिषद्

(शाङ्कर भाष्य, सारस्वती व्याख्या पद्यानुवाद, आंग्ल अनुवाद, शान्तिपाठ एवं शिवसंकल्प सहित)

ईशावास्योपनिषद्

(शाङ्कर भाष्य, सारस्वती व्याख्या पद्यानुवाद, आंग्ल अनुवाद, शान्तिपाठ एवं शिवसंकल्प सहित)

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे
कुलपति
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ.प्र.)

विशाल प्रकाशन
दिल्ली-110094

ISBN : 978-81-88590-13-4

© : लेखक

प्रकाशक :

विशाल प्रकाशन
जी-30, गली नं. 4, गंगा विहार,
दिल्ली-110094

प्रथम संस्करण : 2012

द्वितीय संस्करण : 2016

मूल्य : 250 रुपए

शब्दांकन :
अंकुर कम्प्यूटर्स
दिल्ली-110053

मुद्रक :
शिवानी आर्ट प्रैस, शाहदरा, दिल्ली-110032

समर्पण

पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ
जिनके स्नेहसिक्त वात्सल्य ने अध्ययन के प्रति
सदा ममत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ दी हैं,
उन उदारचेता पूज्यपाद पिताजी पं. श्री वंशराज दुबे जी
एवं
परमपूजनीया मॉ श्रीमती सावित्री देवी जी
के
करकमलों में यह पुष्प
सादर सविनय
समर्पित

विषयानुक्रमणिका

नान्दीवाक्	-	9
प्राक्कथन	-	11
ईशावास्योपनिषद् का उत्स	-	15
ईशावास्योपनिषद्	-	21
प्रमुख उपनिषदों के शांति मंत्र	-	83
शिवसंकल्पसूक्त	-	95

Prof. Rajendra Mishra
M.A. D.Phil. (Alld.) D. Litt. (Shimla)
Ex. Vive-Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varansi-221002 (U.P. INDIA)

Grams : "SHRUTAM"
Phones :
Office : (0542) 2204089
: (0542) 2204213
Resi. : (0542) 2206617

नान्दीवाक्

उपनिषद्-निगम-कल्पतरु का फल है। जैसे वृक्ष के जीवनचक्र में मूल से स्कन्ध, स्कन्ध से शाखाएं, शाखाओं से वृन्त, वृन्त से पल्लव, पल्लवों से पुष्प तथा पुष्पों से फलों का प्रसव होता है और फलों के अमृतोपम रस से ही समूचे वृक्ष के जीवनचक्र की सार्थकता सिद्ध हो जाती है, ठीक उसी प्रकार वेदरूपी ज्ञान-पारिजात की सार्थकता उपनिषद् से सिद्ध होती है।

कालान्तर में, उपनिषद् शब्द सारार्थ अथवा जीवातुतत्त्व का विशेषण बन गया। आचार्य आनन्दवर्धन ने तो ध्वनि अथवा व्यंग्यार्थ को ही काव्य का उपनिषद् तत्त्व मान लिया। जो जिसका प्राणतत्त्व हो, उत्कर्ष-बिन्दु (Excellence) हो वह उसका 'उपनिषत्तत्त्व' कहा गया।

उपनिषद् की गौरवसूचक ये व्याख्याएं उसकी गहनता, रहस्यमयता तथा दुर्व्याख्येयता का बोध कराती हैं। परन्तु व्यावहारिक स्तर पर वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड को 'ब्राह्मण' तथा ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहा गया। पारलौकिक निःश्रेयस की सोपानभूत अध्यात्मविद्या ही उपनिषदों का प्रतिपाद्य रही है, जिसमें शरीर, मन, प्राण, इन्द्रिय, जन्म, मरण, सृष्टि, प्रलयादि गूढ़ विषयों का हस्तामलकवत् ज्ञान तपःपूत ऋषियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

मुगल शहंशाह शाहजहाँ का बड़ा बेटा दाराशिकोह उपनिषदों के रंग में रंग उठा था। वह उपनिषदों को कुरान में उल्लिखित किताबे-मकनून (दिव्यग्रंथ) मानता था। उसने स्वयं 'सिर्रे अकबर' के नाम से पचास उपनिषदों का अरबी में रूपान्तर किया था। शोपेनहॉवर का भी उपनिषत्प्रेम जगविदित है।

यदि स्थालीपुलाकन्यायेन उपनिषदों का दर्शन समझना है तो ईशावास्योपनिषद्

के अठारह मंत्र ही पर्याप्त हैं। चिरंजीवी प्रो. योगेशचन्द्र दुबे ने इन मंत्रों की सर्वजनबोध्य एक बहुकोटिक व्याख्या की है, कुछ अपनी ओर से और कुछ अन्य विपश्चितों के आह्वान से। फलतः इस व्याख्या में भूमिका, हिन्दी पद्यानुवाद, अंग्रेजी रूपान्तर, पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, गद्यानुवाद, सारस्वती व्याख्या तथा संस्कृत व्याख्या-सब समाहित है।

इस विलक्षण सारस्वत अवदानार्थ, मैं युवा विद्वान् का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ तथा आशीर्मण्डित भी!

अभिराज राजेन्द्र मिश्र

प्राक्कथन

उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्गपूर्वक 'षदलृ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। इसका शाब्दिक अभिधेयार्थ है 'समीप बैठना'। लक्षणा से यहाँ गुरुसानिध्यार्थ प्रतीत होता है, अतः 'गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना' ऐसा उपनिषद् का तात्पर्यार्थ ग्राह्य है। षदलृ धातु के तीन अर्थ हैं विशरण, गति एवं अवसादन। जैसा कि धातुपाठ "शदलृ विशरण गत्यवसादनेषु" से सुस्पष्ट है। विशरण का अर्थ है विनाश, गति का अर्थ है प्राप्ति एवं अवसादन का अर्थ है शिथिलता। उपनिषद् सांसारिक-कर्म-जन्य संपूर्ण कर्मफलों का, जो कि प्रारब्ध रूप में विद्यमान होते हैं, उनका सबका विनाश करती है। इस रूप में उपनिषद् में तीनों धात्वर्थ सुप्रसिद्ध हैं। उपनिषद् के सन्दर्भ में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मन्तव्य प्रकट किये हैं

पं. बालगंगाधर तिलक के मतानुसार-"उपनिषद् अध्यात्मचिन्तन की शास्वत धरोहर है। इनमें भारतीय तपःपूत ऋषियों की प्रज्ञा स्पष्ट रूप में मुखरित हुई है। सम्पूर्ण उपनिषद्-साहित्य वैदिक दर्शन की रुचिर प्रस्तुति करता है। इसका यथार्थ लक्ष्य मोक्ष है, जो आत्मज्ञान द्वारा प्राप्य है।"

स्वामी विवेकानंद के मतानुसार "उपनिषदों में यत्र-तत्र सत्य ही चर्चित हुआ है। वह सत्य आत्मा ही है। व्यक्ति अध्यात्म से विमुख होकर सत्य की उपलब्धि कदापि नहीं कर सकता। वस्तुतः उपनिषद् भारतीय धर्म को कर्म से जोड़कर जीवनमार्ग की पगडण्डी सुनिश्चित करती है।"

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के मतानुसार "उपनिषदों में उस अध्यात्म का वर्णन है, जो व्यक्ति में अध्यात्म, समाज या राष्ट्र में अधिभूत तथा विश्व में अधिदैवत के नाम से जाना जाता है। अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत की त्रिपुटी के माध्यम से लोक का सर्वविध कल्याण ही उपनिषदों का अन्तिम लक्ष्य है।"

महर्षि अरविन्द के मत में ''उपनिषद् भारतीयों के बौद्धिक दृष्टिकोण की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। इनमें व्यक्त सम्पूर्ण चिन्तन आत्मा पर केन्द्रित रहा है। सभी अन्तस् एवं बाह्य रूप में विद्यमान् जागतिक तत्त्वों का समालोचन यहाँ प्रमुख वर्ण्य है। उपदेशात्मक शैली में इसकी प्रस्तुति भारतीय मानव का अजस्र प्रेरणास्रोत है।''

डॉ. राधाकृष्णन् के विचारानुसार ''उपनिषद् उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थ हैं। ये भारतीय मनीषियों की अन्तर्मुखी वृत्ति का सुपरिणाम है, अतः अध्यात्मप्राधान्य इनकी सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। बौद्धिकता यहाँ इतने उच्च स्तर पर प्रस्तुत हुई है, कि भारतीयों का संपूर्ण शिक्षादर्शन यहाँ बीजरूप में संग्रहीत हो गया है।''

पाश्चात्य विद्वान् एम.आर. बोडास के शब्दों में ''उपनिषद् अग्नि-उपासक भारतीयों द्वारा अग्नि के समीप बैठकर किये गये अध्यात्म चिन्तन की सफल प्रस्तुति के परिणाम हैं।'' इसी प्रकार हार्वर महोदय के मत में 'उपनिषद् तपश्चरण अथवा ध्यान पद्धति के द्वारा प्राप्त रहस्यों के संग्राहक हैं। ये भारतीय बौद्धिक ज्ञान के अच्छे संकलन हैं। जर्मन विद्वान ओल्डनवर्ग ने उपनिषद् का तात्पर्य पूजापद्धति से लिया है तो ड्यूसन तथा सेनार्टो ने रहस्यविद्या से।

इस प्रकार, उपनिषद् विद्या को आध्यात्मिक रहस्यों का कोष मानना सर्वाधिक उचित होगा। आद्य शंकराचार्य ने उपनिषद्भाष्य में लिखा है

''उपनिषदादयति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयतीत्युपनिषद्।''

अर्थात् उपनिषद् सब अनर्थों की जड़रूपी सांसारिकता को नष्ट करती है, संसार की कारणभूत अविद्या या अज्ञान को शिथिल करती है तथा ब्रह्म की प्राप्ति कराती है।

इसी प्रकार कठोपनिषद् भाष्य में उल्लेख किया गया है

''य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसरः सन्तस्तेषां गर्भजलजरारोगादिवर्गं विनाशयति, उपनिपूर्वकस्य सदिरेवमर्थस्मरणात्। तस्माद्विद्यायां मुख्यया वृत्त्या उपनिषद् शब्दो वर्तते।''

अर्थात् जो इस ब्रह्मविद्या को आत्मभाव से उपासते हैं, वे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक वर्तते हैं तथा अपने गर्भजन्य वृद्धावस्था रोगादि के कष्टों का विनाश करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मविद्या में मुख्य रूप से उपनिषद् शब्द की सार्थकता व्यक्त की गई है।

तैत्तिरीय उपनिषद् भाष्य में भी उपनिषद् शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है ''अविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणात् इत्यनेन अर्थयोगेन विद्या उपनिषद् उच्यते।''

अर्थात् अविद्या इत्यादि सांसारिकता के मूल कारणों का विनाश करने के कारण उपनिषद् को ब्रह्मविद्या कहा गया है।

उपनिषद् कहती है यह सम्पूर्ण सृष्टि परमेश्वर द्वारा रचित है। इसके कण-कण में उनका वास है। अपना कहने के लिए आपके पास कुछ नहीं है। अगर कुछ मनुष्य के पास है तो उसका स्वयं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह भी मृत्यु के समय छीन लिया जायेगा। आप स्वयं को स्वेच्छा से भगवान को अर्पण करते हैं तब परमात्मा तक आपकी पुकार पहुँच पाती है, अर्थात् सर्वस्व समर्पण। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर वह ब्रह्म कहाँ है? श्रीमद्भगवद्गीता उत्तर देती है ईश्वरः सर्वभूतानां हृदयेषु अर्जुन तिष्ठति। अर्थात् हमारे हृदय में। पुनः प्रश्न उठता है कि जब वह हमारे हृदय में वास करता है तो फिर उसे अन्यत्र ढूँढ़ना क्या? आत्मा ही वह ब्रह्म है अहम् ब्रह्मास्मि।

ब्रह्म दूर है, ब्रह्म अत्यन्त निकट है, ब्रह्म बाहर है, ब्रह्म अन्तस् में है, स्थिर है, ब्रह्म मन की गति से भी तेज चलायमान है। ऊँ-पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर पूर्ण ही बचता है। ये सारी बातें साधारण बुद्धि के परे हैं। ब्रह्मविद्या संबंधी उपनिषदों में वर्णित उपर्युक्त तथ्य विद्वानों, मनीषियों, तत्त्वदर्शी सुधी चिंतकों के लिए जब प्रारम्भ से लेकर आज तक गूढ़ रहस्य बना हुआ है तथा समझ और बुद्धि के लिए सुग्राह्य नहीं है, तो स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के कोमल बुद्धि छात्रों एवं सामान्य पाठकों के लिए अत्यन्त कठिन, दुरूह एवं दुर्गम सा प्रतीत होना स्वाभाविक है। स्नातक कक्षाओं में 'ईशावास्योपनिषद्' का लगभग 11 वर्षों से अध्यापन करते हुए, मैंने जिन कठिनाइयों का अनुभव किया उसी के परिमार्जनार्थ तथा छात्रों एवं सुधी पाठकों में ब्रह्मविद्या संबंधी ज्ञान के सम्यक् सम्प्रेषणीयता हेतु प्रस्तुत प्रयास है। पाठकों में उत्सुकता हो सकती है कि 'ईशावास्योपनिषद्' को किस वेद के किस स्थान से कहाँ तक उद्धृत किया गया है? एतदर्थ सर्वप्रथम, 'ईशावास्योपनिषद् का उत्स' शीर्षक के अंतर्गत इसके उद्धृतांश को प्रस्तुत किया गया। पुनः 'ईशावास्योपनिषद्' के 18 मंत्रों का संम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत है। अध्ययन सौविध्य की दृष्टि से ग्रंथ के प्रथम मंत्र शांति पाठ से लेकर 18वें मंत्र पर्यन्त प्रत्येक मंत्र का प्रसंग, पदच्छेद, अन्वय, संस्कृत व्याख्या, हिंदी अनुवाद, सन्धि, समास, व्युत्पत्ति, टिप्पणी, शब्दार्थ, एवं प्रत्येक मंत्र का शांकरभाष्य के साथ सारस्वती हिंदी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। सर्वजनग्राह्यता तथा लोकप्रियता को दृष्टिगत रखते हुए 'ईशावास्योपनिषद्' के प्रत्येक मंत्र का English Version, English translation एवं संत श्री रघुवंशानन्द 'तीर्थ'

जी द्वारा रचित प्रत्येक मंत्र का हिंदी में पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया गया है जिससे पाठकों को अत्यन्त सरलता एवं सहजता का भान होता है।

पाठकों को आत्मोद्धारक एवं व्यावहारोपयोगी कतिपय महत्त्वपूर्ण वैदिक मंत्रों का ज्ञान हो जाये तथा ईशावास्योपनिषद् के अध्ययनावधि में ही इन मंत्रों को जान-समझकर इसे कण्ठाग्र भी कर लें, एतदर्थ ग्रंथ के अंत में 'प्रमुख उपनिषदों के शान्ति मंत्र' शीर्षक के अंतर्गत ऐसे मंत्रों को एक स्थान पर संग्रथित किया गया है। इसी अनुक्रम में अन्ततः 'शिव संकल्प सूक्त' शीर्षक के अंतर्गत अध्येता के मन को शिवसंकल्प युक्त बनाने वाले मंत्रों 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' से ग्रंथ को विश्राम दिया गया है। ईशावास्योपनिषद् के इस ग्रंथ से पाठकों-छात्रों, सुधी चिंतकों का कल्याण हो तथा संस्कृत जगत एवं विद्वत्समुदाय का आशीः प्राप्त हो इसी भावना के साथ परमात्मा से संबंधित परमात्मा की यह कृति 'त्ववदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये' के अनुसार उस परब्रह्म परमात्मा को समर्पित।

विनयावनत
प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

ईशावास्योपनिषद् का उत्स

भाष्यकारों ने शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का द्रष्टा 'दध्यङ्ङाथर्वण' को ऋषि बताया है। यजुः सर्वानुक्रमणी ने यजुर्वेद के अन्तिम पाँच अध्यायों का ऋषि 'दध्यङ्अथर्वा' कहा है। अतः 'दध्यङ्अथर्वा' को ही इन मंत्रों का प्रथम प्रस्तोता माना जा सकता है। यजुर्वेद के कुछ संस्करणों में चालीसवें अध्याय का 'ऋषिः दीर्घतपा' लिखा हुआ है।

ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन अन्तिम एवं काण्वसंहिता का प्रमुख उपनिषद् ग्रन्थ है। दोनों संहिताओं में चालीसवें अध्याय के रूप में इस उपनिषद् का उल्लेख हुआ है। इसमें आत्मज्ञान का विचार किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में उपनिबद्ध होने से इसकी वेदान्त संज्ञा सुप्रसिद्ध है। काण्वसंहिता का जो अन्तिम चालीसवाँ अध्याय है, वही इस समय 'ईशोपनिषद्' या 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से जाना जाता है। माध्यन्दिनशाखीय वाजसनेयी संहिता के चालीसवें अध्याय में सत्रह मन्त्र प्राप्त होते हैं, जबकि काण्वशाखीय संहिता में अठारह मंत्र उपलब्ध होते हैं। दोनों संहिताओं के कुछ पाठभेद निम्न हैं

वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता-पाठः

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।1।।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।2।।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।3।।

अनेजदेकं मनसो जीवयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।4।।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।5।।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सु ।।6।।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानिआत्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।7।।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्,
अस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-
र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।8।।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ।।9।।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।10।।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ।।11।।

अन्धं तमः प्राति शन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।12।।

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।13।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामश्तमश्नुते ।।14।।

वायुरनिलममश्तमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर, क्लबे स्मर कृतं स्मर ।।15।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो,
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।16।।

हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽओउम्सावहं खं ब्रह्म ।।17।।

इति शुक्ल यजुर्वेदीया माध्यन्दिनशाखीया ईशावास्योपनिषद्

शुक्लयजुर्वेदीय-काण्वसंहिता-पाठः

ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गधः कस्य स्विद् धनम् ।।1।।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।2।।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताँ स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।3।।

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।4।।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदनन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्रतः ।।5।।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।6।।

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।7।।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण
मस्नाविरं ँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीशी परिभूः स्वयम्भूर्याथा-
तथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।8।।

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः ।।9।।

अन्यदेवाहुर्विद्यया ऽन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।10।।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभ्य ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।11।।

अन्धं तमः प्रविशन्ति यऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ँरताः ।।12।।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।13।।

सम्भतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय ँसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतश्नुते ।।14।।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावश्णु सत्यधर्माय दृष्टये ।।15।।

पूषन्नेकर्षे यमसूर्य-प्राजा-
पत्य व्यूह रश्मीन्त्समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याण तमं तत्ते पश्यामि,
याऽसावसौ पुरुषः सोऽमस्मि ।।16।।

वायुरनिलमम तमथेदं भस्मान्तँ्शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर कृँत्स्मर क्रतो स्मर कृतँ्स्मर ।।17।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिँ्विधेम ।।18।।

इति शुक्लयजुर्वेदीया काण्वशाखीया ईशावास्योपनिषद्।

ईशावास्योपनिषद्
ĪŚHĀVĀSYA UPANIAṢHAD

ईशावास्योपनिषद्

ĪŚHĀVĀSYA UPANIAṢHAD

शान्तिपाठ

प्रसंग - शान्तिपाठ एवं ब्रह्म की पूर्णता का वर्णन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

Translitration

Ōm pūrṅamadah pūrnāmïdaṁ purnat pūrṅamudachyaté, pūrṅasya pūrṅamādāya pūrṅaméwa awashïshvaté.

Ōm Shāntïh Shāntïh Shāntïh

Translation

That is full, this full. From full, the full is taken, the full has come. If you take out full from the full, the full alone remains.

Om, Shanti Shanti Shanti

पद्यानुवाद

ओम पूर्ण परब्रह्म सनातन जगत् पूर्ण कहलाता है।
उत्पन्न होकर पूर्ण ब्रह्म से आँखों से दिखलाता है।।
दे निकाल जब पूर्ण-पूर्ण से पूर्ण शेष रह जाता है।
यही शेष अवशेष निरंतर शुद्ध ब्रह्म कहलाता है।।

पदच्छेद

ओम् पूर्णम् अदः पूर्णम् इदम् पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते। पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अन्वय

ॐ अदः ओम् पूर्णम् इदम् (जगत्) पूर्णम् पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते। पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

शब्दार्थ

अदः - वह (ओम् का विशेषण) ओम् = परमात्मा, ब्रह्म, रक्षा करने वाला, पूर्णम् = पूर्ण, पूरा। इदम् = यह (संसार या कार्यब्रह्म), पूर्ण = पूर्ण, पूरा या सम्पूर्ण। पूर्णात् = पूर्ण से, पूर्णम् = पूर्ण, उदच्यते = निकालता या उत्पन्न होता है, पूर्णस्य = पूर्ण से, पूर्णम् = पूर्ण को, आदाय = लेने पर या निकालने पर, पूर्णम् एव = पूर्ण ही केवल पूर्ण, अवशिष्यते = बचता है, शेष रहता है।

अनुवाद

वह (ब्रह्म) पूर्ण है, यह (जगत्) पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म में से यह पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। पूर्ण की पूर्णता को लेकर जब जगत् प्रलय-अवस्था में चला जाता है, तो शेष पूर्ण (परमात्मा) ही रह जाता है। ॐ त्रिविध ताप शान्त हों।

संस्कृत व्याख्या

अदः तत् (ब्रह्म), ओम् - परब्रह्म पूर्णम् - सम्पूर्णम्, इदम् - पश्यमानं दृश्यमानं संसारः, पूर्णम्, पूर्णात्-परब्रह्मणः, पूर्णम् - जगत्, उदच्यते जायते, उत्पद्यते वा। पूर्णस्य - ब्रह्मणः, पूर्णम्-जगत्, आदाय - गृहीत्वा, पूर्णम् एव, अवशिष्यते - अवशिष्टं भवति। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः - ॐ त्रिविध तापानां व शमनं व भवन्तु ।

शाङ्करभाष्य

पूर्णमदः पूर्णम् न कुतश्चिद् व्यावृत्तं व्यापीत्येतत्। निष्ठा च कर्तरि द्रष्टव्या। अदः इति परोक्षाभिधायि सर्वनाम, तत् परं ब्रह्मत्यर्थः। तत् सम्पूर्णम् आकाशवद् व्यापि निरन्तरं निरूपाधिकं च। तदेव इदं सोपाधिकं नामरूपस्थं व्यवहारापन्नं पूर्णम् स्वेन रूपेण परमात्मना व्याप्येव, न उपाधिपरिच्छिन्नेन विशेषात्मना। तदिदं विशेशापन्नं कार्यात्मकं ब्रह्म पूर्णात् कारणात्मनः उदच्यते उद्रिच्यते उद्गच्छतीत्येतत्। यद्यपि कार्यात्मना उद्रिच्यते तथापि यत् स्वरूपं पूर्णत्वं परमात्मभावः, तन्न जहाति, पूर्णमेवोद्रिच्यते। पूर्णस्य कार्यात्मनो ब्रह्मणः पूर्णम् पूर्णत्वम् आदाय गृहीत्वा आत्मस्वरूपैक-रसत्वमापाद्य, विद्ययाऽविद्याक तं भूतमात्रोपाधिसंसर्गजमन्यत्वावभासं तिरस्कृत्य पूर्णमेय अनन्तरमबाह्यं प्रज्ञानघनैकरसस्वभावं केवलं ब्रह्म अवशिष्यते।

सम्बन्ध-भाष्य

ईशा वास्यमित्यादयो मन्त्रः ईशादि - कर्मस्वविनियुक्ताः।

मन्त्रणां तेषामकर्मशेषस्यात्मनो विनियोगः याथात्म्यप्रकाशकत्वात्। याथात्म्य चात्मनः शुद्धत्वापापविद्धत्वैकत्व नित्यत्वाशरीरत्वसर्वगतत्वादि वक्ष्यमाणम्। तच्च कर्मणा विरूध्येतेति युक्त एवैषां कर्मस्वविनियोगः।

न ह्यवंलक्षणमात्मनो याथात्म्य मुत्पाद्यं विकार्यमाप्यं संस्कार्यं कतृभोक्तृरूपं वा येन कर्मशेषता स्यात्। सर्वासामुपनिषदा मात्मयाथात्म्यनिरूपणेनैव उपक्षयात्। गीतानां मोक्षधर्माणां चैवंपरत्वात्। तस्मादात्मनोऽनेकत्व - कतृत्वभोक्र्तृवादि चाशुद्धत्व-पापविद्धत्वादि चोपादाय लोकबुद्धिसिद्धं कर्माणि विहितानि।

यो हि कर्मफलेनार्थी दृष्टेन कर्मणि ब्रह्मवर्चसादिनादृष्टेन कस्य स्वर्गादिना च द्विजाति-अधिकारः रहं न काणकुब्जत्वाद्यनधिकारप्रयोजकधर्मवानित्यात्मानं मन्यते सोऽधिक्रियते कर्मस्विति ह्यधिकारविदो वदन्ति।

तस्मादेते मन्त्र आत्मनो अनुबन्ध याथात्म्यप्रकाशनेन चतुष्टयम् आत्मविशयं स्वाभाविक- मज्ञानं निवर्तयन्तः शोक मोहादिसंसारधर्मविच्छित्तिसाधन-मात्मैकत्वादिविज्ञानमुत्पादयन्ति। इत्येवमुक्ताधिकार्यभिधेयसम्बन्ध प्रयोजनान्मत्रन्संक्षेपतो व्याख्यास्यामः।

'ईशा वास्यम्' आदि मन्त्रों का कर्म में विनियोग नहीं है, क्योंकि वे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले हैं जो कि कर्म का शेष नहीं है। आत्मा का यथार्थ स्वरूप शुद्धत्व, निष्पापत्व, एकत्व, नित्यत्व, अशरीरत्व और सर्वगतव्य आदि है जो आगे कहा जाने वाला है। इसका कर्म से विरोध है; अतः इन मन्त्रों का कर्म में विनियोग न होना ठीक ही है।

आत्मा का ऐसे लक्षणों वाला यथार्थ स्वरूप उत्पाद्य, विकार्य, आप्य और संस्कार्य अथवा कर्ता-भोक्तारूप नहीं है, जिससे कि वह कर्म का शेष हो सके। सम्पूर्ण उपनिषदों की परिसमाप्ति आत्मा के यथार्थ स्वरूप का निरूपण करने में ही होती है तथा गीता और मोक्षधर्मों का भी इसी में तात्पर्य है। अतः आत्मा के सामान्य लोगों की बुद्धि से सिद्ध होने वाले अनेकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा अशुद्धत्व और पापमयत्व को लेकर ही कर्मों का विधान किया गया है।

कर्माधिकार के ज्ञाताओं का भी यही कथन है कि जो पुरुष ब्रह्मतेज आदि दृष्ट और स्वर्ग आदि अदृष्ट कर्म फलों का इच्छुक है और 'मैं द्विजाति हूँ तथा कर्म के अनधिकारसूचक कानेपन, कुबड़ेपन आदि धर्मों से युक्त नहीं हूँ' ऐसा अपने को मानता है, वही कर्म का अधिकारी है।

अतः ये मन्त्र आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रकाश करके आत्मसम्बन्धी स्वाभाविक अज्ञान को निवृत्त करते हुए संसार के शोक मोहादि धर्मों के विच्छेद के साधन स्परूप आत्मैकत्वादि विज्ञान को ही उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार जिनके (मुमक्षुरूप) अधिकारी (आत्मैक्यरूप) विषय (प्रतिपाद्य-प्रतिपादकरूप) सम्बन्ध और (अज्ञाननिवृत्ति तथा परमानन्द प्राप्ति रूप) प्रयोजन का ऊपर उल्लेख हो चुका है, उन मन्त्रों की अब हम संक्षेप से व्याख्या करेंगे।

सारस्वती व्याख्या

यह मंत्र बृहदारण्यकोपनिषद् के पाँचवें अध्याय के प्रथम ब्राह्मण की प्रथम कण्डिका का पूर्वार्द्ध है एवं यहाँ प्रस्तुत उपनिषद् के शान्तिपाठ के रूप में पढ़ा गया है।

मंत्राशय बहुत ही व्यापक है। मूलतः यह सम्पूर्ण उपनिषद् का सार ही है। इसी का विस्तार सम्पूर्ण मंत्रों में हुआ है। पूर्ण परब्रह्म परमात्मा से पूर्ण जगत् को निकाल लेने पर भी वह ब्रह्म पूर्ण ही बचा रहता है। जिस प्रकार असीम से असीम निकालने पर भी असीम ही शेष रहता है। निहितार्थ यह है कि कोई व्यक्ति अपना सारा ज्ञान अपने शिष्य को दे दे तो भी सम्पूर्ण ज्ञान गुरु के पास शेष ही रह जाता है। माता अपना सम्पूर्ण वात्सल्य अपने शिशु पर न्योछावर कर दे फिर भी सम्पूर्ण वात्सल्य माता को अक्षुण्ण ही रहता है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म पूर्ण जगत् को प्रकट करने के बाद भी पूर्ण ही रहता है। यहाँ तीन बार 'शान्ति' पद विघ्न-त्रय या ताप-त्रय शमनार्थ आया है। आध्यात्मिक (मन एवं शरीर से सम्बद्ध ताप) आधि-दैविक (देवताओं द्वारा प्राप्त ताप), एवं आधि-भौतिक (प्राणियों द्वारा प्राप्त ताप) इन्हीं तीनों प्रकार के तापों के प्रशमनार्थ शान्ति-त्रय का विधान है।

टिप्पणी

ॐ 'ओम्' ब्रह्म का द्योतक।

अदः तुरीय चैतन्य या परब्रह्म। श

इदम् कार्यब्रह्म या जगत्।

उदच्यते = उत् + अञ्च (जाना), लट् प्र. पु. एक., भ्वादिगण, कर्मवाच्य।

सन्धि - पूर्णम् + अदः = पूर्णमदः। पूर्णम् + इदम् = पूर्णमिदमं। पूर्णात् + पूर्णम् + उदच्यते = पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णम + आदाय = पूर्णमादाय। पूर्णम् + एव + अवशिष्यते = पूर्णमेवावशिष्यते।

प्रसंग - ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं आत्मोन्नति का मार्ग

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।।

Translitration

Ōm ēshāsyam ïdam sarawam yatkïñcha jagaty am jagat,
téna tyakténa bhuñēhthā mā gridhah kasyawïd dhanaṃ.

Translation

All this, whatsoever moves in this universe, is indwelled by Isha: therefore, through renunciation do thou enjoy, and do not covet anybody's wealth.

पद्यानुवाद

अखिल विश्व में जो जड़ चेतन जगतीतल पर दिखलाता।
सबमें व्याप्त एक परमेश्वर यही ज्ञान है सिखलाता।।
रख ईश्वर को साथ निरंतर त्यागपूर्ण जो भोग करे।
भोग्य वस्तु है नहीं किसी का जान सर्वथा त्याग करे।।

पदच्छेद

ईशा वास्यम् इदम् सर्वम् यत् किम् च जगत्याम् जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। मा गृधः कस्य स्वित् धनम्।।

अन्वय

इदं सर्वम् ईशा वास्यम् यत्किञ्च् जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः स्वित् धनं कस्य।

शब्दार्थ

इदं = यह, सर्वं = सब, ईशा = ईश्वर द्वारा, वास्यं = व्याप्त, यत्किञ्च् = जो कुछ, जगत्यां = संसार में, जगत् = सक्रिय, तेन = उस कारण, त्यक्तेन = त्याग के साथ, भुञ्जीथाः = उपभोग कर। मा गृधः = लोभ मत कर, कस्य = किसका, स्वित् = भला, धनं = सम्पति।

अनुवाद

जगत में क्रियाशील यह सब जितना भी दृश्यमान पदार्थ है, अर्थात् जो कुछ दिखाई देता है, वह ईश्वर से व्याप्त है। अतः इस जगत् और पदार्थो का त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए। लोभ नहीं करना चाहिए, क्योंकि धन किसका है ? अर्थात् किसी का भी नहीं है।

संस्कृत व्याख्या

इदम् = एतत्, सर्वं = जगत्, ईशा = ईश्वरेण, वास्यम् = व्याप्तमित्यस्ति। यत्किंच = यदपि वस्तु पदार्थों वा, जगत्यां = लोकेऽस्मिन्, जगत् = क्रियाशीलो

दृश्यते, तदप्यखिलं चराचरमिति तेन व्याप्तमस्तीति भावः। तेन = तस्मात् कारणात्, त्यक्तेन = त्यागवृत्या, भुञ्जीथाः = तान् जागतिकपदार्थान् उपभुङ्क्ष्व। मा गृधः = लोलुपत्वेन किमपि द्रव्यं मा गृह्याः। स्वित् = जातु, धनं = लौकिकं सम्पत्, कस्य = कस्य प्राणिन आयतम् अस्ति।

शाङ्करभाष्य

ईशा ईष्ट इतीट् तेनेशा। ईशिता परमेश्वरः परमात्मा सर्वस्य स हि सर्वमीष्टे सर्वजन्तुनामात्मा सन्प्रत्यगात्मतया तेन स्वेन रूपेणात्मनेशा वास्यमाच्छादनीयम्।

किम् ? इदं सर्व यत्किञ्च यत्किञ्चिज्जगत्यां पृथिव्यां जगत्तत्सर्वं स्वेनात्मना ईशेव प्रत्यायात्मतयाहमेवेदं सर्वमिति परमार्थसत्यरूपेणान तदिमं सर्वं चराचरमाच्छादनीयं स्वेन परमात्मना।

यथा चन्दनागर्वातेरूदकादिसम्बन्धजक्लेदादिजमौपाधिकं दौर्गन्ध्यं तत्स्वरूपनिधर्षणेन आच्छाद्यते स्वेन पारमार्थिकेन गन्धेन। तद्वदेव हि स्वात्मनि अध्यस्तं स्वाभाविकं कृर्त्तत्वभोक्तश्त्वादिलक्षणं जगद् द्वैतरूपं जगत्यां पृथिव्याम् जगत्यामिति उपलक्षणार्थत्वात्सर्वमेव नामरूपकर्माख्यं विकारजातं परमार्थसत्यात्मभावनया त्यक्तं स्यात्।

एवमीश्वरात्मभावनया युक्तस्य पुत्रद्येषणात्रयसंन्यास एवाधिकारी न कर्मसु। तेन त्यक्तेन त्यागेनेत्यर्थः। न हि त्यक्तो मृतः पुत्रे वा भृन्त्यो वा आत्मसम्बन्धिताया अभावात् आत्मानं पालयति अतस्त्यागेन इत्ययमेव वेदार्थः भुञ्जीथाः पालयेथाः।

एवं त्यक्तैशणस्त्वं मा गृधः गृधिमाकाङ्क्षा मा कार्षीर्धनविषयाम् कस्य स्विद् धनं कस्यचित्परस्य स्वस्य वा धनं मा काङ्क्षीरित्यर्थः। स्विदित्यनर्थको निणतः।

अथवा मा गृधः। कस्मात् ? कस्य स्विद्धनमित्याक्षेपार्थो न कस्य चिद्धनमस्ति यद् ह्यो। आत्मैवेदं सर्वमितीश्वरभावनया सर्वं त्यक्तमत आत्मन एवेदं सर्वमात्मैव च सर्वमतो मिथ्याविषयां गृधि मा कार्षीरित्यर्थः ।

हिन्दी अनुवाद

जो ईशन (शासन) करे उसे ईश् कहते हैं, उसका तृतीयान्त रूप 'ईशा' है। सबका ईशन करने वाला परमेश्वर परमात्मा है। वही सब जीवों का आत्मा होकर अन्तर्यामी रूप से सबका ईशन करता है। उस अपने स्वरूपभूत आत्मा ईश से सब वास्य-आच्छादन करने योग्य है।

क्या (आच्छादन करने योग्य है) ? यह सब जो कुछ जगती अर्थात् पृथ्वी में जगत् (स्थावर - जंगम प्राणिवर्ग) है वह सब अपने आत्मा ईश्वर से - अन्तर्यामी रूप

से यह सब कुछ मैं ही है ऐसा जानकर अपने परमार्थ सत्य स्वरूप परमात्मा से यह सम्पूर्ण मिथ्याभूत चराचर आच्छादन करने योग्य है।

जिस प्रकार चन्दन और अगरू आदि की, जल आदि के सम्बन्ध से गीलेपन आदि के कारण उत्पन्न हुई औपाधिक दुर्गन्धि उन (चन्दनादि) के स्वरूप को घिसने से उनके पारमार्थिक गन्ध से आच्छादित हो जाती है, उसी प्रकार अपने आत्मा में आरोपित स्वाभाविक कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि लक्षणों वाला द्वैतरूप जगत् जगती में यानी पृथिवी में - 'जगत्याम्' यह शब्द (स्थावर - जंगम सभी का) उपलक्षण करानेवाला होने से - इस परमार्थ-सत्यस्वरूप आत्मा की भावना से नाम-रूप और कर्ममय सारा ही विकारजात परित्यक्त हो जाता है।

इस प्रकार जो, ईश्वर ही चराचर जगत् का आत्मा है - ऐसी भावना से युक्त है, उसका पुत्रादि तीनों एषणाओं के त्याग में ही अधिकार है - कर्म में नहीं। उसके त्यक्त अर्थात् त्याग से (आत्मा का पालन कर) त्यागा हुआ अथवा मरा हुआ पुत्र या सेवक, अपने सम्बन्ध का अभाव हो जाने के कारण अपना पालन नहीं करता, अतः त्याग से - यही इस श्रुति का अर्थ है भोग यानी पालन कर।

इस प्रकार एषणाओं से रहित होकर तू गर्द्ध अर्थात् धनविषयक आकांक्षा न कर। किसी के धन की अर्थात् अपने या पराये किसी के भी धन की इच्छा न कर। यहाँ 'स्वित्' यह अर्थरहित निपात है।

अथवा आकांक्षा न कर, क्योंकि धन भला किसका है ? इस प्रकार इसका आक्षेपसूचक अर्थ भी हो सकता है अर्थात् धन किसी का भी नहीं है जो उसकी इच्छा की जाय। यह सब आत्मा ही है इस प्रकार ईश्वर भाव से यह सभी परित्यक्त हो जाता है। अतः यह सब आत्मा से उत्पन्न हुआ तथा सब कुछ आत्मरूप ही होने के कारण मिथ्यापदार्थ विषयक आकांक्षा न कर ऐसा इसका तात्पर्य है।

सारस्वती व्याख्या

इस मरणशील संसार में सब कुछ ईश का है अन्यथा मरने के बाद भी लोग इसका वहन करते। सभी कुछ जब ईश्वर का ही है तो त्याग-भाव से उपभोग करना चाहिए। अगर मनुष्य एषणात्रय-पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणा का त्याग कर दे तो वह ईश की सत्ता के करीब आकर उसका साक्षात कर पायेगा एवं ज्ञाननिष्ठ हो जायेगा। इस प्रकार इस मन्त्र में ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

टिप्पणी

सन्धि

यत्किञ्च = यत्+किम्+च (हल्संधि परसवर्ण) स्विद्धनम् = स्वित्+धनम् (जृत्व)

समास

ईशावास्यम् = ईशा वास्यम् (अलुक तत्पु.)

व्युत्पत्ति

ईशा = ईश् + टा (तृतीया-एकवचन), वास्यम् = वस् + ण्यत्। जगत्याम् = जगत् + डीप् + डि.(सप्तमी-एकवचन) जगत् = गम् + क्वसु। त्यक्तेन = त्यज् + क्त + टा (तृतीया एकवचन)। भुञ्जीथाः = भुञ्ज + थास् (मध्यमपुरुष-एकवचन)। गृधः = गृध् + सिप् (लोट्)। कस्य = किम् + ङ.स् (षष्ठी-एकवचन)।

प्रसंग - कर्मविधि एवं कर्मजन्य दोषों से निवृत्ति

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।2।।

Translitration

Kurwannéwéha karmäṅï jïjēwishéchchhataṃ samāh,
éwam twayï nānyathétōōstï na karma lïpyaté naré.

Translation

Let every man wish to live for a hundred years while performing karmas in this world. Thus, other than this, there is no way out for you; karmas do not bind the man.

पद्यानुवाद

शत वर्षों का जीवन चाहे शास्त्रनियत वह कर्म करे।
त्याग भाव से ईश्वरहित ही कर्म-धर्म का मर्म भरे।।
जीवन को अर्पण कर अपने विहित कर्म का धर्म धरे।
लिप्त न हो अपने कर्मों में मुक्ति मार्ग का धर्म सरे।।

पदच्छेद

कुर्वन् एव इह कर्माणि जिजीविषेत् शतम् समाः। एवम् त्वयि न अन्यथा इतः अस्ति न कर्म लिप्यते नरे।

अन्वय

इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत्। एवं त्वयि। इतः अन्यथा न अस्ति। कर्म नरे न लिप्यते।

शब्दार्थ

इह = यहाँ, कर्माणि = कर्मों को, कुर्वन् एव = करता हुआ ही, शतं = सौ, समाः = वर्ष, जिजीविषेत् = जीने की इच्छा करे। एवं = इस प्रकार, त्वयि = तुम प्राणी में, इतः = इससे, अन्यथा = भिन्न, न अस्ति = नहीं है, कर्म = लौकिक कर्म, नरे = मनुष्य में, न लिप्यते = लिप्त नहीं होते।

अनुवाद

इस लोक में सभी प्रशस्त कर्मों को करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष जीवन जीने की इच्छा करे। इस प्रकार तुम्हारे अन्तस् में यह भावना सुदृढ़ हो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। लौकिक कर्म मनुष्य से लिप्त नहीं होते (अपितु मनुष्य ही कर्मों से लिप्त होता है, अतः उसे कर्म में आसक्ति का परित्याग करना चाहिए।)

संस्कृत व्याख्या

इह = अस्मिन् लोके, कर्माणि = काम्यादीनि नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासनादीनि वा कार्याणि, शास्त्रविहितानि सदाचारादीनि वा, कुर्वन् = विद्धत्, एव = केवलं, शतं समाः = शतवर्षाणि यावत्, जिजीविषेत् = जीवितुमिच्छेत्। एवम् = इत्थं, त्वयि = भवति प्राणिनि मनुष्ये वा नैष्ठिकता स्यात्। इतः = अस्मात्, अन्यथा = पृथक्, न अस्ति = नैष्ठिकी भावना न भवति। कर्म = लौकिकं कार्यजातं, नरे = मनुष्ये, न = नैव, लिप्यते = आसज्यते।

शांकरभाष्य

कुर्वन्नेव इह निवर्तयन्नेव कर्माण्यग्निहोत्रादीनि जिजीविषेज्जीवितुमीच्छेच्छतं शतसंख्याकाः समाः संवत्सरान्। तावद्धि पुरुषस्य परमायुर्निरूपितम्। तथा च प्राप्तानुवादेन यज्जिजीविषेच्छतं वर्षाणि तत् कुर्वन्नेव कर्माणि इत्येतद्विधीयते।

एवमेवम्प्रकारेण त्वयि जिजीविषेति नरे नरमात्राभिमानिनीत एतस्मादग्निहोत्रादीनि कर्माणि कुर्वतो वर्तमानात्प्रकारादन्यथा। प्रकारान्तरं नास्ति येन प्रकारेणाशुभं कर्म न लिप्यते इत्यर्थः। अतः शास्त्रविहितानि कर्माण्यग्निहोत्रादीनि कुर्वन्नेव जिजीविषेत्।

कथं पुनरिदमवगम्यते पूर्वेण संन्यासिनो ज्ञाननिष्ठोक्ता द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति।

उच्यते; ज्ञानकर्मणोर्विरोधं पर्वतवदकम्प्यं यथोक्तं न स्मरसि किम्? इहाप्युक्तं 'यो हि जिजीविषेत् स कर्म कुर्वन्' ईशा वास्यमिदं सर्वम् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम् इति च! न जीविते मरणे वा गृधिं कुर्वीतारण्यमियादिती च पदम्; ततो न पुनरियाम्' इति सन्यासशासनात् उभयोः फलभेदं वक्ष्यति।

इमौ द्वावेव पन्थावनुनि क्रान्ततरौ भवतः क्रियापथश्चैव पुरस्तात्संन्यासश्चोतरेण। निवृतिमार्गेण एशणात्रयस्य त्यागः ययोः संन्यासपथ एवारिरेचयति। ''न्यास एवात्यरेचयत्'' इति च तैतिरीयके।

''द्वाविमावध पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिर्लक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभावितः।।''

इत्यादि पुत्राय विचार्य निश्चितमुक्तं व्यासेन वेदाचार्येण भगवता। विभागञ्चादयोः दर्शयिष्यामः

इस लोक में अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए ही सौतक अर्थात् सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे, पुरुष की बड़ी-से-बड़ी आयु इतनी ही बतलायी गयी है। अतः उस प्राप्त हुई आयु का अनुवाद करते हुए यह विधान किया गया है कि यदि सौ वर्ष जीने की इच्छा करे तो कर्म करते हुए ही जीना चाहिए।

इस तरह, इस प्रकार जीने की इच्छा करने वाले तुझ मनुष्य - मनुष्यत्व - मात्र का अभिमान करने वाले के लिये इस अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए ही (आयु बिताने के) वर्तमान प्रकार से भिन्न और कोई ऐसा प्रकार नहीं है, जिससे अशुभ कर्म का लेप न हो। अर्थात् जिससे वह पुरुष कर्म से लिप्त न हो। अतः अग्निहोत्र आदि शास्त्रविहित कर्मों को करते हुए ही जीने की इच्छा करे।

पूर्व. - यह कैसे जाना गया कि पूर्व मन्त्र से सन्यासी ज्ञाननिष्ठा का तथा द्वितीय मन्त्र से संन्यास में असमर्थ पुरुष की कर्मनिष्ठा का वर्णन किया गया है?

सिद्धान्ती - कहते हैं, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है कि जैसा पहले (सम्बन्ध-भाष्य में) कह चुके हैं ज्ञान और कर्म का विरोध पर्वत के समान अविचल है। यहाँ भी 'जो जीने की इच्छा करे वह कर्म करते हुए ही (जीना चाहे)' तथा 'यह सब ईश्वर से आच्छादन करने योग्य है' 'उस (चराचर-जगत्) - के त्याग द्वारा आत्मा की रक्षा कर' 'किसी के धन की इच्छा न कर' इत्यादि वाक्यों से (कर्मी और संयासी की निष्ठाओं का भेद ही) निरूपण किया है। तथा 'जीवन या मरण का लोभ न करे, वन को चला जाय - यही वेद की मर्यादा है। और फिर वहाँ से घर न लौटे' इस वाक्य से भी (ज्ञाननिष्ठा के लिये) संन्यास का ही विधान किया है। आगे इन दोनों निष्ठाओं के फल का भेद भी बतलायेंगे।

ये दोनों ही मार्ग सृष्टि के आरम्भ से परम्परागत हैं। इनमें पहले कर्म मार्ग है और पीछे संन्यास। (संन्यासरूप) निवृत्तिमार्ग से तीनों एषणाओं का त्याग किया जाता है। इन दोनों में संन्यास मार्ग ही उत्कर्ष प्राप्त करता है। तैत्तिरीय श्रुति में भी कहा

है कि 'संन्यास ही उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ।' वेदाचार्य भगवान व्यास ने भी बहुत सोच-विचारकर ही अपने पुत्र से यह निश्चित बात कही है - 'जिनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। ऐसे ये दो ही मार्ग हैं - एक तो प्रवृत्ति लक्षण धर्ममार्ग और दूसरा अच्छी तरह भावना किया हुआ निवृत्ति मार्ग'। इन दोनों का विभाग हम आगे दिखलायेंगे।

सारस्वती व्याख्या

वेदों का उद्घोष ही रहा है :

पश्येम शरदः शतम्।

जीवेम शरदः शतम्।

प्रब्रवाम् शरदः शतम्।

सौ साल की जीवन कामना करनी चाहिए, परन्तु कर्मों को भी सम्पादित करना है, क्योंकि कोई भी क्षण ऐसा नहीं जब मनुष्य कार्य नहीं करता गीता भी यही कहती है

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्मः सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

(3.5 गीता)

कर्म करते हुए फलासक्ति का त्याग भी करना है। गीता का अकर्म या कर्म सन्यास यही तो है। कर्म फलासक्ति होने से व्यक्ति उससे उत्पन्न सुख-दुखादि मायारूपी गुणों का शिकार हो जाता है एवं पुनः अंधकार की ओर प्रवृत हो जाता है। अतः **असतो मा सदगमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय** की प्राप्ति हेतु फलासक्ति त्याग अनिवार्य है।

टिप्पणी

सन्धि

कुर्वन्नेवेह = कुर्वन् + एव + इह (हल्संधि, गुणसंधि) जिजीविषेच्छतम् = जिजीविषेत् + शतम् (छत्व, तुगागम), नान्यथेतोऽस्ति = न + अन्यथा + इतः + अस्ति (दीर्घ, गुण, पूर्वरूप)

समास

नरे = न रमते इति नरः, तस्मिन्।

व्युत्पत्ति

कुर्वन् = कृ + शतृ। कर्माणि = कृ + मनिन् + शस् (द्वितीया-बहुवचन) नपुंसक लिंग। जिजीविषेत् = जीव् + सन् + तिप् (लिंङ्) प्रथमपुरुष-एकवचन। त्वयि = युश्मद + ङि. (सप्तमी-एकवचन) अन्यथा = अन्य + थाल्। इतः = इदम् + तसिल्। अस्ति = अस् + तिप् (लट्) प्रथम पुरुष-एकवचन। लिप्यते = लिम्प्

+ यक् + त (लट्) आत्मनेपद (प्रथमपुरुष एकवचन)। नरे = नर + ङि (सप्तमी एकवचन)।

प्रसंग - अज्ञानी की निन्दा

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।3।।

Translitration

Asuryā nāma té lokā andhéna tamasāāvritāhā,
taṃsté prétyābhïgachchhantï yé ké chātmahanō janāh.

Translation

There are worlds covered with intasible darkness. They are just inscrutable worlds. The killers of the self depart to these worlds.

पद्यानुवाद

जो असुरों के सिद्ध लोक हैं अंधकार से भरे पड़े।
क्लेश-मोह अज्ञान व्याधि से वे हैं हरदम सड़े-गले।।
आत्म हनन करनेवाले नर फल पाते हैं खड़े-खडे।
मरकर जाते उसी लोक में बार-बार वे अड़े-पड़े।।

पदच्छेद

असुर्याः नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः। तान् ते प्रेत्य अभि गच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः।।

अन्वय

ते असुर्या नाम लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः। ते प्रेत्य तान् अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः।

शब्दार्थ

असुर्या नाम = 'असुर्य' नाम वाले, ते लोकाः = वे लोक (पृथिव्यादि), अन्धेन तमसा = प्रगाढ़ अज्ञानरूपी अन्धकार से, आवृताः = आच्छन्न हैं। ते = वे, प्रेत्य =मृत्यु को प्राप्त कर, तान् = उन लोकों को, अभिगच्छन्ति = जाते हैं। ये के च = जो कोई, आत्महनः = आत्मघाती, जनाः = मनुष्य हैं।

अनुवाद

प्राणशक्ति के आधाररूप वे पृथ्वी इत्यादि लोक गाढ़े अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छादित हैं। वे मनुष्य मरने के उपरान्त उन पृथिव्यादि लोकों को प्राप्त करते हैं, जो आत्मघाती होते हैं।

संस्कृत व्याख्या

ते = अस्मात् लोकाद् इतरे अदृश्यमाणा, असुर्याः = प्राणाधारस्वरूपा पृथिवीसहिता इमे, नाम= विशिष्टसंज्ञोपेताः भूर्भुवः स्वर्महः जनतपः सत्यादयः, लोकाः = ब्रह्माण्डे स्थानभूताः, अन्धेन = प्रगाढेन, तमसा = अन्धकारेण, आवृताः = आच्छनाः विद्यन्ते। ते = तादृशाः जनाः, प्रेत्य = मृत्युं प्राप्य, तान् = भूरादीन् लोकान्, अभिगच्छन्ति = प्रयान्ति, ये के च = ये हि, आत्महनः = आत्मघातिनः, जनाः = प्राणिनः भवन्ति।

शांकरभाष्य

असुर्याः परमात्मभावमद्वयमपेक्ष्य देवादयोऽप्यसुरास्तेशाञ्च स्वभूता लोका असुर्या नाम। नामशब्दोऽनर्थको निपातः।

ते लोकाः कर्मफलानि। लोक्यन्ते दृश्यन्ते भुज्यन्ते इति जन्मानि। अन्धेनादर्शनात्मकेनाज्ञानेन तमसावृता आच्छादिताः तान्स्थावरान्तान्प्रत्युक्तमेवं देहमभिगच्छन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।

आत्मानं घ्नन्तीत्यामहनः। के ते जनाः येऽविद्वांसः। कथं त आत्मानं नित्यं हिंसन्ति अविद्यादोषेण विद्यमानस्य तिरस्करणात्। विद्यमानस्य आत्मनो यत्कार्यं फलमजरामरत्वादिसंवेदनलक्षणं तद्धतस्येव तिरोभूतं भवतीति प्राकृता विद्वांसो जना आत्महन उच्यन्ते। तेन ह्यात्महननदोषेण संसरन्ति ते ।।3।।

अद्वय परमात्म भाव की अपेक्षा से देवता आदि भी असुर ही हैं। उनके सम्पत्ति स्वरूप लोक 'असूर्य' हैं। 'नाम' शब्द अर्थहीन निपात है। जिनमें कर्मफलों का लोकन-दर्शन यानी भोग होता है, वे लोक अर्थात् जन्म (योनियाँ) अन्ध - अदर्शनात्मक तम यानी अज्ञान से आच्छादित हैं। वे इस शरीर को छोड़कर अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार उन (ब्रह्मा से लेकर) स्थावरपर्यन्त योनियों में ही जाते हैं।

जो कोई आत्मा का घात (नाश) करते हैं, वे आत्मघाती हैं। वे लोग कौन हैं ? जो अज्ञानी हैं। वे सर्वदा अपने आत्मा की किस प्रकार हिंसा करते हैं ? अविद्यारूप दोष के कारण अपने नित्यसिद्ध आत्मा का तिरस्कार करने से (अज्ञानी जीवों की दृष्टि में) नित्य विद्यमान आत्मा का अजरामरत्वादिज्ञानरूप कार्य यानी फल मरे हुए के समान तिरोभूत रहता है, इसलिये प्राकृत अज्ञानीजन आत्मघाती कहे जाते हैं। इस आत्मघातरूप दोष के कारण ही वे जन्म-मरण को प्राप्त होते हैं।

सारस्वती व्याख्या

जो लोग आत्मघाती हैं (अविद्या के कारण) वे अधोगति को प्राप्त करते हैं।

आत्मघाती लोग ईश्वर की व्यापकता, सामाजिक हित, परार्थ, त्याग, सदाचार, सन्मार्ग आदि को तिरस्कृत करते हैं एवं नरकगामी होते हैं। अतः मनुष्य को शुभ कार्य करते रहना चाहिए।

टिप्पणी

सन्धि

तमसाऽऽवृताः = तमसा + आवृताः (दीर्घसंधि), ताँस्ते = तान् + ते (हल्संधि), प्रेत्याभिगच्छन्ति = प्रेत्य + अभिगच्छन्ति (दीर्घसन्धि), चात्महनो = च + आत्महनो (दीर्घसन्धि)

समास

असुर्या : = असून् रान्तीत्यसुराः असुराणामिमे इत्यसुर्याः। आत्महनः = आत्मानं 'घ्नन्ति' इति ते (उपपद)

व्युत्पत्ति

आवृताः = आङ् + वृङ् + क्त। प्रेत्य = प्र + इण् + ल्यप्। अभिगच्छन्ति = अभि + गम् + झि (लट्), आत्महनः = आत्मन् + हन् क्विप्। जनाः = जन् + ड।

प्रसंग - आत्मा का तात्त्विक स्वरूप

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।4।।

Translitration

Anéjadékam manasō jawēyō
nánaddévā āpnuwan pürwamarshat,
taddhāwatöönyāna tyéti tïshthat
tasmïnnapö matarïshwā dadhātï.

Translation

Atma is motionless, but it is swifter than the mind. Senses can never overtake it. It runs ahead of them. While sitting, it goes faster than those who run after it. In this Atma, the individual soul places the karmas.

पद्यानुवाद

अचल ब्रह्म परमेश्वर एकः मन से तीव्र चले दिन-रात।
सबका आदि सनातन है वह अजरामर से भी अज्ञात।।
दौड़ रहे जो अन्य अनेकों इस स्थिर से खाते मात।

उसी अचल की शक्ति प्राप्त कर वायुदेव करते बरसात।।

पदच्छेद

अनजेत् एकम् मनसः जवीयः। न एनद् देवाः आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्। तत् धावतः अन्यान् अत्येति तिष्ठत्। तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति।

अन्वय

तत् एकम् अनेजत् पूर्वम् अर्षत् मनसः जवीयः तिश्ठत् धावतः अन्यान् एति। एनत् देवाः न आप्नुवन्। मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति।

शब्दार्थ

तत् = वह, एकं = एक (अकेला), अनेजत् = कम्परहित (स्थिर), पूर्वं = पुरातन अर्षत् = स्फूर्ति देने वाला, मनसः = मन से, जवीयः = वेगवान्, तिष्ठत् = ठहरता हुआ, धावतः = दौड़ते हुए, अन्यान् = अन्यों को (दूसरों को), एति = प्राप्त करता है। एनत् = इसे, देवाः = देवगण, न = नहीं, आप्नुवन् = प्राप्त करते हैं। मातरिश्वा = वायु, तस्मिन् = उसमें, अपः = जल को, दधाति = धारण करता है।

अनुवाद

वह आत्मा, एक, स्थिर, पुरातन, स्फूर्तिदायक एवं मन से भी अधिक वेगवान् है। वह स्थिर रहकर भी दौड़ते हुए दूसरे स्वेतर प्राणियों या पदार्थों को अतिक्रान्त कर जाता है। देवता भी उसे नहीं पा सके। उसके आश्रित रहकर ही वायु भी जल को वहन करता है।

संस्कृत व्याख्या

तत् = ईश्वराख्यं परं तत्त्वं, एकम् = अनेकत्वरहितम् अद्वितीयमिति वा, अनेजत् = अचलं स्पन्दशून्यं वा, पूर्वं = सर्वस्य दृश्यमाणस्य चराचरस्य आदिभूतं, अर्षत् = सर्वेशां प्रेरयिता, मनसः = चेतसः अपेक्षयापि, जवीयः = वेगवत्तरं, तिष्ठत् = स्थिरोऽपि, धावतः = गतिशीलान्, अन्यान् = इतरान् सर्वान्, एति = अतिक्रामति, एनत् = इदं तत्त्वं, देवाः = ब्रह्मादयः सुरा अपि, न = नैव, आप्नुवन् = अलभन्त। मातरिश्वा = वायुरपि, तस्मिन् = परब्रह्मणि परमात्मनि वा, अपः = जलं, दधाति = धारयति।

शांकरभाष्य

अनेजत् न एजत्। एजृ कम्पने, कम्पनं चलनं स्वावस्थाप्रच्युतिस्तद्वर्जितं सर्वदैकरूपमित्यर्थः। तच्चैकं सर्वभूतेषु मनसः संकल्पादिलक्षणाद् जीरयो जववत्तरम्।

कथं विरूद्धमुच्यते ध्रुवं निश्चलमिदं मनसो जवीय इति च।

नैश दोषः। निरुपाध्युपाधिमत्वेनोपपत्तेः। तत्र निरुपाधिकेन स्वेन रुपेणोच्यते अनेजदेकमिति मनसोऽन्तःकरणस्य सकंल्पविकल्पलक्षणस्योपाधेरनुवर्त्तनाद् इह देहस्थस्य मनसो ब्रह्मलोकादिदूरगमनं संकल्पेन क्षणमात्रद्धवतीत्यतो मनसो जविष्ठत्वं लोके प्रसिद्धम्। तस्मिन् मनसि ब्रह्मलोकादिन्द्रुतं गच्छति सति प्रथमं प्राप्तं इवात्मचैतन्यावभासो गृह्यतेऽतो मनसो जवीय इत्याह।

नैनद्देवा द्योतनाद्देवाश्चक्षुरादीनीन्द्रियाण्येतत्प्रकृतमात्मतत्त्वं नाप्नुवन्न प्राप्तवन्तः। तेभ्यो मनो जवीयः। मनोव्यापारव्यवहितत्वाद् आभासमात्रमपि आत्मनो नैव देवानां विषयीभवति।

यस्माज्जवनान्मनसोऽपि पूर्वमर्षत् पूर्वमेव गतं व्योमवद् व्यापित्वात्। सर्वव्यापि तदात्मतत्त्वं सर्वसंसारधर्मवर्जितं स्वेन निरुपाधिकेन स्वरूपेणाविक्रियमेव सदुपाधिकृताः सर्वाः संसारविक्रिया अनुभवतीत्यविवेकिनां मूढ़ानामनेकमिव च प्रतिदेहं प्रत्यवभासत इत्येतदाह।

तद्धावतो द्रुतं गच्छतोऽन्यानात्मविलक्षणान्मनोवागिन्द्रियप्रभृतीनत्येति अतीत्य गच्छति इव। इवार्थं स्वयमेव दर्शयति तिष्ठदिति स्वयमविक्रियमेव सदित्यर्थः।

तस्मिन्नात्मतत्त्वे सति नित्यचैतन्यस्वभावे मातरिश्वा मातरि अन्तरिक्षे श्वयति गच्छतीति मातरिश्वा वायुः सर्वप्राणभृत् क्रियात्मको यदाश्रयाणि कार्यकरणजातानि यस्मिन्नोतानि प्रोतानि च यत्सूत्रसंज्ञकं सर्वस्य जगतो विधारयितृ स मातरिश्वाः अपः कर्माणि प्राणिनां चेश्टालक्षणानि अग्न्यादित्यपर्जन्यादीनां ज्वलनदहनप्रकाशाभिवर्षणादिलक्षणानि दधाति विभजति इत्यर्थः।

धारयतीति वा 'भीशास्माद्वातः पवते' इत्यादिश्रुतिभ्यः। सर्वा हि कार्यकरण विक्रिया नित्यचैतन्यात्मकस्वरूपे सर्वास्पदभूते सत्येव भवन्तीत्यर्थः।।

जो चलने वाला न हो उसे 'अनेजत्' कहते हैं, क्योंकि 'एजृ कम्पने' (इस धातुसूत्रसे) 'एज्' धातु का अर्थ कम्पन है। इस प्रकार (वह आत्मतत्त्व) कम्पन-चलन अर्थात् अपनी अवस्था से च्युत होने से रहित है यानी सदा एकरूप है। वह एक ही सब प्राणियों में वर्तमान है तथा संकल्पादिरूप मन से भी जवीय - अधिक वेगवान् है।

पूर्व. - यह विरुद्ध बात कैसे कही जाती है कि वह आत्मतत्त्व ध्रुव एवं निश्चल है तथा मन से भी अधिक वेगवान् है ?

सिद्धान्ती - यह कोई दोष नहीं है ? क्योंकि निरुपाधिक और सोपाधिकरूप से यह विरूद्ध कथन भी बन सकता है, उस अवस्था में अपने निरूपाधिकरूप से तो 'अविचल' और 'एक' - ऐसा कहा जाता है तथा अन्तःकरण की मनरूप

संकल्पविकल्पात्मिका उपाधि का अनुवर्तन करने के कारण (मन से भी अधिक वेगवान् कहा गया है।) इस लोक में देहस्थ मन का ब्रह्मलोक आदि दूर देशों में संकल्परूप से एक क्षण में ही गमन हो जाता है, अतः मन का अत्यन्त वेगत्व तो लोक में प्रसिद्ध ही है। किन्तु उस मन के ब्रह्मलोकादि में बड़ी शीघ्रता से पहुँचने पर वहाँ आत्मचैतन्य का आभास पहले ही से पहुँचा हुआ-सा अनुभव किया जाता है। इसी से 'मन से भी अधिक वेगवान् है' ऐसा श्रुति कहती है।

जिसका प्रकरण चल रहा है ऐसे इस आत्मतत्त्व को देवगण भी प्राप्त अर्थात् उपलब्ध नहीं कर सके विषयों का द्योतन (प्रकाश) करने के कारण चक्षु आदि इन्द्रियाँ ही 'देव' हैं। उन इन्द्रियों से तो वेगवान् है। अतः (आत्मा तथा इन्द्रियों के बीच में) मनोव्यापार का व्यवधान रहने के कारण आत्मा का तो आभास मात्र भी इन्द्रियों का विषय नहीं होता।

क्योंकि आकाश के समान व्यापक होने के कारण वह वेगवान् मन से भी पहले ही गया है। वह सर्वव्यापी आत्मतत्त्व अपने निरूपाधिक स्वरूप से सम्पूर्ण संसार धर्मों से रहित तथा अविक्रिय होकर ही उपाधिकश्त सम्पूर्ण सांसारिक विकारों को अनुभव करता है और अविवेकी मूढ़ पुरुषों को प्रत्येक शरीर में अनेक-सा प्रतीत होता है, इसी से श्रुति ने ऐसा कहा है।

वह दौड़ते अर्थात् तेजी से चलते हुए, आत्मा से भिन्न अन्य मन, वाणी और इन्द्रिय आदि का अतिक्रमण कर जाता है - मानो उन्हें पार करके चला जाता है। 'इव' का भावार्थ श्रुति 'तिष्ठत' (ठहरनेवाला) इस पद से स्वयं ही दिखला रही है। अर्थात् स्वयं अविकारी रहकर ही दूसरों को पार कर जाता है।

उस नित्य चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व के वर्तमान रहते हुए ही जो मातरि अर्थात् अन्तरिक्ष में सञ्चार-गमन करता है, वह मातरिश्वा-वायु, जो समस्त प्राणों का पोषक और क्रियारूप है, जिसके अधीन ये सारे शरीर और इन्द्रिय हैं तथा, जिसमें ये सब ओत-प्रोत हैं और जो सूत्रसंज्ञक तत्त्व निखिल जगत् का विधाता है, वह मातरिश्वा अप् अर्थात् प्राणियों के चेष्टारूप कर्म यानी अग्नि, सूर्य और मेघ आदि के ज्वलन, दहन, प्रकाशन एवं वर्षा आदि कर्म विभक्त करता है, ऐसा इसका भावार्थ है।

अथवा 'इसके भय से वायु चलता है' इत्यादि (भाववाली) श्रुतियों के अनुसार 'दधाति' का अर्थ 'धारण करता है' ऐसा जानो। क्योंकि शरीर और इन्द्रिय आदि सभी विकार सबके अधिष्ठानस्वरूप नित्य चैतन्य आत्मतत्त्व के विद्यमान रहते ही होते हैं।

सारस्वती व्याख्या

ब्रह्म अचल होते हुए भी मन से भी अधिक गतिवान है। देवता को भी वह अप्राप्त है। ब्रह्म का आदेश पाकर ही वायु, जल का वहन करता है। वायु ही समस्त प्राणों का पोशक और क्रियारूप है। ब्रह्म स्वयं स्थिर रहता हुआ सब जीवों को नियम से चलाता है और उन्हें धारण करता है; उस व्याप्त ब्रह्म में जीव अपने कर्मों को स्थापित करता है।

टिप्पणी

सन्धि

अनेजदेकं = अनेजत् + एकम्। नैनद् = न + एनत् (वृद्धि), तद्धावतोऽन्यान् = तत् + धावतः + अन्यान् (हल्संधि, पूर्वरूप संधि), अत्येति = अति + एति (यण्)। तस्मिन्नपः = तस्मिन् + अपः।

समास

अनेजत् = न एजते इति अनेजत् (उपपद, नञ्)

व्युत्पत्ति

जवीयः = जवस् + ईयसुन् (प्रथमपु, एकवचन), देवाः = दिव् अच् + जस् (प्रथमा-बहुवचन)। अर्षत् = ऋष् + शतृ। धावतः = धाव् + शतृ + शस् (द्वितीया - बहुवचन), अत्येति = अति + इण् + तिप् (लट्)। तिष्ठत् = स्था + शतृ। मातरिष्वा = मातरि + शीङ्+ क्वनिप्।

प्रसंग - आत्मा की सर्वव्यापकता

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।5।।

Translitration

Tadéjatï tannájatï teddüré tadwantïké

Tadantarasya sarwasya tadu sarwasyāsya bāhyatah.

Translation

That moves on and does not move. It is far and near. It is inside and outside of all. It is all, and *it is all.*

पद्यानुवाद

चलते सदा, कभी ना चलते, दूर सबों से, सबके पास।
देख कार्य यह मन भ्रम खाता खो देता अपना विश्वास।।

जग के भीतर भरे पड़े हैं उनका ही है यह आभास।
बाहर भी तो दीख रहा है एक ब्रह्म का सुच्छ प्रकाश।।

पदच्छेद

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् उ अन्तिके। तत् अन्तः अस्य सर्वस्य तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः।।

अन्वय

तत् एजति, तत् न एजति, तत् दूरे, तत् उ अन्तिके, तत् अस्य सर्वस्य अन्तः, तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः।

शब्दार्थ

तत् = वह, एजति = चलायमान करता है, तत् = वह, न = नहीं, एजति = चलता, तत् = वह, दूरे = दूर है, तत् उ = वह ही, अन्तिके = निकट है, तत् = वह, अस्य = इस, सर्वस्य = सम्पूर्ण विश्व के, अन्तः = भीतर है, तत् उ = वह ही, अस्य = इस, सर्वस्य = सम्पूर्ण लोक के, बाह्यतः = बाहर है।

अनुवाद

वह आत्मा प्राणियों व पदार्थों को चलायमान करता है (उन्हें सक्रिय अथवा गतिशील बनाता है) किन्तु वह स्वयं नहीं चलता (अपितु स्थिर रहता है) वह आत्मा ही सब प्राणियों एवं पदार्थों के अन्दर विद्यमान है, तो निश्चित रूप से उन सबके बाहर भी व्याप्त है। (अर्थात् बाहर-भीतर सर्वत्र आत्मतत्त्व व्याप्त है।)

संस्कृत व्याख्या

तत् = ईश्वराख्यं परमात्मतत्त्वम्, एजति = सर्वाणि तत्त्वान्तराणि चालयति, चलायमानाति विदधाति, तत् तदेवात्मतत्त्वं, न = नैव, एजति = स्वयं कम्पते चलतीति वा। तत् = तदात्मतत्त्वं, दूरे = दूरपर्यन्तं व्याप्तमस्ति, तत् उ = तदेव चापि, अन्तिके = समीपस्थान् व्याप्नोति। तत् = आत्मतत्त्वं, अस्य = दृश्यमाणस्य, सर्वस्य = सकलस्य चराचरस्य, अन्तः = अन्तर्विद्यमानमस्ति। तद् उ = तदेवापि, अस्य = एतस्य, सर्वस्य = सम्पूर्णस्य जगतः, बाह्यतः = बहिर्विद्यमानम् अस्ति।

शांकरभाष्य

तदात्मतत्त्वं यत्प्रकृतं तदेजति चलति तदेव च नैजति स्वतो नैव चलति स्वतोऽचलमेव सत् चलतीवेत्यर्थः। किञ्च तद् दूरे वर्शकोटिशतैरप्यत्र विदुशामप्राप्यत्वाद् दूर इव। त द् उ अन्तिके इतिच्छेदः। तद्वन्तिके समीपेऽत्यन्तमेव विदुशामात्मत्वान्न केवलं दूरेऽन्तिके च। तदन्तरभ्यन्तरेऽस्य सर्वस्य 'य आत्मा सर्वान्तरः' इत श्रुतेः। अस्य

सर्वस्य जगतो नामरूपक्रियात्मकस्य तदु अपि सर्वस्य अस्य बाह्यतो व्यापकत्वादाकाशवन्निरतिशयसूक्ष्मत्वाद् अन्तः। प्रज्ञानघन एव इतः च शासनान्निरन्तरं च।।

जिसका प्रकरण है वह आत्मतत्त्व एजन करता चलता है, वही स्वयं नहीं भी चलता अर्थात् स्वयं अचल रहकर ही चलता हुआ-सा जान पड़ता है। यही नहीं, वह दूर भी है; अज्ञानियों को सैकड़ों, करोडों वर्षों में भी अप्राप्य होने के कारण दूर-जैसा है। ('तद्वन्तिके' का) तत् उ अन्तिके - ऐसा पदच्छेद करना चाहिए। वही अन्तिक अत्यन्त समीप भी है अर्थात् केवल दूर ही नहीं, विद्वानों का आत्मा होने के कारण समीप भी है। वह इस सबके अन्तर यानी भीतर भी है जैसा कि 'जो आत्मा सर्वान्तर है' इत्यादि श्रुति से सिद्ध होता है। आकाश के समान व्यापक होने के कारण वह इस नामरूप और क्रियात्मक सम्पूर्ण जगत् के बाहर तथा सूक्ष्म रूप होने से इसके भीतर भी है। और श्रुति के 'प्रज्ञानघन ही है' इस कथन के अनुसार वह निरन्तर (बाहर-भीतर के भेद को त्यागकर सर्वत्र) ही है।

सारस्वती व्याख्या

ब्रह्म माया के कारण साकार है। साकार होने से चलता है एवं ब्रह्म होने से स्थित है। एक ही वस्तु अन्दर एवं बाहर कैसे होगी? निराकरण यह है कि आत्मा या ब्रह्म अपने अंशरूप से प्राणि शरीरों में विद्यमान होता है, जबकि पूर्णांश में वह सर्वव्यापक होने से सर्वत्र विद्यमान रहता है।

प्रसिद्ध भौतिकवेता (Heisen Berg) ds (Principle of Uncertanity) 'अनिश्चितता का सिद्धान्त' में भी कणों की सर्वव्यापकता सिद्ध है। सिद्धान्तानुसार इस मंत्र की सिद्धि प्रायोगिक रूप से भी हो जाती है। गीता भी प्रमाणित करती है

बहिरन्तष्व भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।
(गीता 13/15)

टिप्पणी

सन्धि

तदेजति = तत् + एजति। तन्नैजति = तत् + न + एजति (हल्संधि, वृद्धिसंधि)। तद्वन्तिके = तद् + उ + अन्तिके (यण्)। तदन्तरस्य = तत् + अन्तः + अस्य (विसर्गसंधि)। तदु = तत् + उ। सर्वस्यास्य = सर्वस्य + अस्य (दीर्घसंधि)।

व्युत्पत्ति

एजति = एज + तिप् (लट्) - छान्दस परस्मैपद। अस्य = इदम् + ड.स् (पु.), षष्ठी - एकवचन। सर्वस्य = सर्व + ड.स् (षष्ठी-एकवचन) बाह्यतः = बहिः + अण् + तसिल्।

प्रसंग - आत्म ज्ञान से समदर्शिता भाव

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।6।।

Translitration

Yastu sarwānï bhütānyātmanyéwa anupashyatï,
Sarwabhütéshu chātmānaṁ tatō na wïjugupsaté.

Translation

One who constantly sees all beings in the higher self or in the spiritual consciousness, does not shrink nor does he hate.

पद्यानुवाद

देख रहा जो सब जीवों को पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर में।
सर्वाधार निखिल जगकर्त्ता जगनायक सर्वेश्वर में।।
प्राणिमात्र में देख रहा जो अखिल ब्रह्म निखिलेश्वर को।
घृणाभाव से रहित हुआ जाता पाता पूर्णेश्वर को।।

पदच्छेद

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति। सर्वभूतेषु च आत्मानम्। ततः न विजुगुप्सते।

अन्वय

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव, सर्वभूतेषु च आत्मानम् अनुपश्यति, ततः न विजुगुप्सते।

शब्दार्थ

यःतु = और जो, सर्वाणि भूतानि = सब चराचर प्राणियों को, आत्मनि एव = अपने में ही, अनुपष्यति = देखता है सर्वभूतेषु च = और सब प्राणियों में, आत्मानम् = अपने को, अनुपष्यति = देखता है। ततः = उस कारण, न विजुगुप्सते = घृणा नहीं करता।

अनुवाद

और जो मनुष्य वस्तुतः सम्पूर्ण चराचर भूत-प्राणियों को अपने में विद्यमान आत्मरूप अनुभव से देखता है तथा उसी प्रकार सब भूत-प्राणियों में अपनी आत्मरूपता को अनुभव से देखता है, तो उस कारण (अर्थात् पारस्परिक आत्मतुल्यता के परिणामस्वरूप) वह किसी से घृणा अथवा तिरस्कार नहीं करता।

संस्कृत व्याख्या

यःतु = योऽपि प्राणी, सर्वाणि = निखिलानि, भूतानि = प्राणमयानि जीवभूतानि पदार्थान्तराणि, आत्मनि = आत्मस्थानि, एव = केवलं, अनुपश्यति = विलोकयति, आत्मभावेनावगच्छतीति भावः। सर्वभूतेषु = सर्वप्राणिषु, च = अपि, आत्मानं = स्वम्, अनुपश्यति = विलोकयति। ततः तस्मात् सर्वात्मैक्यविज्ञानात्, न = नैव, विजुगुप्सते = जुगुप्सां घृणाम् आचरतीत्याशयः।

शांकरभाष्य

यः परिवाड्मुमुक्षुः सर्वाणि भूतान्यव्यक्तादीनि स्थावरान्तानि आत्मन्येवानु पश्यत्यामं-व्यतिरिक्तानि न पश्यतीत्यर्थः। सर्वभूतेषु च तेष्वेव चात्मानं तेशाम् अपि भूतानां स्वमात्मानमात्मत्वेन यथास्य देहस्य कार्यकारणसंघातस्यात्मा अहं सर्वप्रत्ययसाक्षिभूतश्चेतयिता केवलो निर्गुणोऽनेनैव स्वरूपेणाव्यक्तादीनां स्थावरान्तानामहमेवात्मेति सर्वभूतेषु चात्मानं निर्विशेषं यस्त्वनुपश्यति स ततस्तस्मादेव दर्शनान्न विजुगुप्सते विजुगुप्सां घृणां न करोति।

प्राप्तस्यैवानुवादोऽयम्। सर्वा हि घृणात्मनोऽन्यद् दृष्टं पश्यतो भवति। आत्मानमेवात्यन्तं विशुद्धं निरन्तरं पश्यंतो न घृणानिमित्तमर्थान्तरमस्तीति प्राप्तमेव। ततो न विजुगुप्सते इति।

जो परिव्राट् मुमुक्षु अव्यक्त से लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है अर्थात् उन्हें आत्मा से पृथक् नहीं देखता तथा उन सम्पूर्ण भूतों में भी आत्मा को देखता है अर्थात् उन भूतों के आत्मा को भी अपना ही आत्मा जानता है यानी यह समझता है कि जिस प्रकार मैं इस देह के कार्य (भूत) और करण (इन्द्रिय) संघात का आत्मा और इसकी समस्त प्रतीतियों का साक्षी, चेतयिता, केवल और निर्गुण हूँ उसी प्रकार अपने इसी रूप से अव्यक्त से लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का आत्मा भी मैं ही हूँ। इस प्रकार जो सब भूतों में अपने निर्विशेष आत्मस्वरूप को ही देखता है, वह उस आत्मदर्शन के कारण ही किसी से जुगुप्सा यानि घृणा नहीं करता।

यह प्राप्त वस्तु का ही अनुवाद है। सभी प्रकार की घृणा अपने से भिन्न किसी दूषित पदार्थ को देखने वाले पुरुष को ही होती है, जो निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध

आत्मस्वरूप को ही देखने वाला है, उसकी दृष्टि में घृणा का निमित्तभूत कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं; यह बात स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसीलिये वह किसी से घृणा नहीं करता।

सारस्वती व्याख्या

जो व्यक्ति विद्या द्वारा ब्रह्म का साक्षात् कर लिया वह ब्रह्मविद हो गया। वह सभी ब्रह्म एवं सभी को ब्रह्म का रूप ही देखेगा; अतः वह किसी से भी घृणा नहीं करेगा क्योंकि ईश्वर की रचना में घृणा का स्थान नहीं है। मुण्डकोपनिषद् इसी भाव को व्यक्त करता है -

छिद्यन्ते सर्वसंशया-स्तस्मिन् दृष्टे परावरे। व्यक्ति ज्ञानोपासना से ऐकात्म्यज्ञान प्राप्त कर संशय रहित हो गया है। गीता में भी सममन्त्र भाव द्रष्टव्य है -

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं चमयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

गीता 6/30

टिप्पणी

सन्धि

यस्तु = यः + तु (विसर्गसंधि), आत्मन्येवानुपश्यति = आत्मनि + एव + अनुपश्यति (यण्, दीर्घ) चात्मानं = च + आत्मानम् (दीर्घसंधि)।

समास

सर्वभूतेषु = सर्वाणि च तानि भूतानि तेषु (कर्मधारयः), अनुपश्यतः अनुभवेन पश्यतीति (मध्यमपदलोपी)।

व्युत्पत्ति

सर्वाणि = सर्व + शस् (नपुं) द्वितीया, बहुवचन। भूतानि = भू + क्तशस् (नपुं) द्वितीया, बहुवचन। आत्मनि = आत्मन् + डि. (सप्तमी, एकवचन)। अनुपश्यति = अनु + दृश + तिप् (लट्) - प्रथमपुरुष, एकवचन। ततः = तद् + तसिल्। विजुगुप्सते = वि + गुप् + सन् + त (लट्) - प्रथम पुरुष, एकवचन।

प्रसंग - आत्मज्ञान से स्थितप्रज्ञता

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।7।।

Translitration

Yasmïn sarwāñï bhütānyātmáwa abhüdwïjānatah,

tatra kö möhah kah shöka ékatwam anupashyatah

Translation

When all beings become one in one's own higher consciousness, then what delusion and grief is there for one who is constantly seeing oneness ?

पद्यानुवाद

इस प्रकार जब परमेश्वर को भली भाँति लेता वह जान।
सब जीवों में ब्रह्म भाव का उसमें हो जाता उत्थान।।
प्रभु और प्रभु का अभिनय रहता अन्य न होता कुछ भी भान।
परमानन्द प्राप्त कर जाता शोक-मोह का कर अवसान।।

पदच्छेद

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूद् विजानतः। तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः।।

अन्वय

यस्मिन् विजानतः आत्मा एव सर्वाणि भूतानि अभूत्। तत्र एकत्वम् अनुपश्यतः कः मोहः कः (च) शोकः।

शब्दार्थ

यस्मिन् = जिस लोक में, विजानतः = विज्ञानी पुरुष का, आत्मा एव = आत्मा ही, सर्वाणि भूतानि = सब चराचर प्राणियों के रूप में, अभूत् = हो गया है, तत्र = उस लोक में, कः मोहः = कैसा मोह, कः शोकः = कैसा शोक, एकत्वं = एकरूपता को, अनुपश्यतः = देखने वाले को।

अनुवाद

जिस ज्ञान के आलोक में ज्ञानवान् पुरुष का आत्मा ही सम्पूर्ण चराचर भूत-प्राणियों में सर्वत्र व्यापक रूप से अवस्थित हो गया है, उस ज्ञानमय वातावरण में अन्य प्राणियों व अपने बीच एकरूपता को अनुभवपूर्वक देखने वाले मनुष्य के लिए क्या मोह और क्या शोक? (अर्थात् वह शोक-मोह से भी रहित हो जाता है।)

संस्कृत व्याख्या

यस्मिन् = यस्मिन् लोके, विजानतः = सर्वात्मैक्यविज्ञानस्य ज्ञातुः प्राणिविशेसस्य, आत्मा एव = शरीरस्थो जीवात्मा एव, सर्वाणि = निखिलानि, भूतानि = चराचराणि, अभूत् = सञ्जातः, तत्र = तस्मिन् लोके, एकत्वं = सर्वभूतेषु आत्मगतम् ऐक्यं,

अनुपश्यतः = विलोकयतः, कः = कीदृशः, मोहः = लोभः, कः = कीदृशः, शोकः = दुःख विशेषो वा। तस्य मोहशोकादयो नैव जायन्त इत्यर्थः।

शांकरभाष्य

यस्मिन् काले यथोक्तात्मनि वा तान्येव भूतानि सर्वाणि परमार्थात्मदर्शनादात्मैवाभूद् आत्मैव संवृतः, परमार्थवस्तु विजानतः तत्र कस्मिन् काले तत्रात्मनि वा को मोहः कः शोकः। शोकश्च मोहश्च कामकर्मबीजम् अजानतो भवति। न त्वात्मैकत्वं विशुद्धं गणनोपमं पश्यतः। को मोहः कः शोक इति शोकमोहयोरविद्याकार्ययोराक्षेपेण असम्भवप्रदर्शनात् सकारणस्य संसारस्यात्यन्तमेवोच्छेदः प्रदर्शितो भवति।

जिस समय अथवा जिस पूर्वोक्त आत्मस्वरूप में परमार्थतत्त्व को जानने वाले पुरुष की दृष्टि में वे ही सब भूत परमार्थ आत्मस्वरूप के दर्शन से आत्मा ही हो गये अर्थात् आत्मभाव को ही प्राप्त हो गये, उस समय अथवा उस आत्मा में क्या मोह और क्या शोक रह सकता है; शोक और मोह तो कामना और कर्म के बीज को न जानने वाले को ही हुआ करते हैं, जो आकाश के समान आत्मा का विशुद्ध एकत्व देखने वाला है, उसको नहीं होते।

'क्या मोह और क्या शोक'; इस प्रकार अविद्या के कार्यस्वरूप शोक और मोह की आक्षेप रूप असम्भवता दिखलाकर कारण सहित संसार का अत्यन्त ही उच्छेद प्रदर्शित किया गया है।

सारस्वती व्याख्या

जो व्यक्ति आत्मतत्त्व से पूर्ण हो चुका है वह जीवनमुक्त है। वह अकर्म की अवस्था में है, वह स्थितप्रज्ञ हो गया है पुनः अविद्या के अवयव शोक एवं मोहरूपी कीचड़ उसे कुछ नहीं कर सकते।

इन उपनिषदों की सूक्ति की नैतिक शिक्षा यही है कि आत्मानुभूति प्राप्त पुरुष सभी मनुष्यों में आत्मा का ही स्वरूप देखता है।

टिप्पणी

सन्धि

आत्मैवाभूद् = आत्मा + एव + अभूद् (वृद्धिसंधि, दीर्घसंधि), को मोहः = कः + मोहः (उत्व)। एकत्वमनुपश्यतः = एकत्वम् + अनुपश्यतः।

समास

विजानतः = विशेषेण जानातीति तस्य (उपपद)। अनुपश्यतः = अनुपश्यतीति तस्य (उपपद)।

व्युत्पत्ति

अभूत् = भू + तिप् (लुङ्) - प्रथम पुरुष, एकवचन। विजानतः = वि + ज्ञा+ शतृ + ङस् (षष्ठी, एकवचन)। तत्र = तस्मिन् + त्रल्। मोहः = मुह् + घञ्। शोकः = शुच् + घञ्। एकत्वम् = एक + त्वल् + अम्-द्वितीया, एकवचन। अनुपश्यतः = अनु + दृश् + शतृ + ङस् (षष्ठी, एकवचन)।

प्रसंग - परमात्मा के गुणों का वर्णन

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।8।।

Translitration

Sa paryagāchchhukram akāyam avraṅam asnāwïram
shuddham apāpawïddham,
kawïrmaneshe parïbhuh swayambhūr yāthātathyatö
örthān vyadadhāt shāshwatēbhyah samābhyah.

Translation

He is all-pervading, bright, bodyless and unscathed. He has no muscles. He is pure and sinless. The wise ones say, He is omniscient and Self-born. He is functioning everywhere since eternity.

पद्यानुवाद

आदि काल से जो परमेश्वर संसृति का करता निर्माण।
परिभू और स्वयंभू है वह, है सर्वज्ञ-तज्ञ-महिमान।।
छिद्ररहित समदृष्टा है वह शुद्ध सच्चिदानन्द सुजान।
पंचभूत से रहित, सूक्ष्म-स्थूल देह से भी मतिमान ।।
भाट्विकार से रहित नियंता परम तेजमय अन्तर्ज्ञान।
यथायोग कर्मानुसार वह देता सबको जन्म निदान।।
परम तेजमय सबका रक्षक सबसे रहित सदा भगवान।
पाकर ऐसे परम ब्रह्म को समदर्शी पाता कल्याण ।।

पदच्छेद

सः परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्। अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम्। कविः मनीशी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

अन्वय

सः परि अगात् अकायम् अस्नाविरम् अव्रणम् शुद्धम् अपापविद्धम् शुक्रम् कविः मनीशी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थान् व्यदधात्।

शब्दार्थ

सः = वह, परि अगात् = सर्वत्र गतिशील है, अकायं = काया से रहित, अस्नाविरं = स्नायुरहित, अव्रणं = घावरहित, शुद्धं विशुद्ध रूप मे स्थित, अपापविद्धं = पाप से न बँधा हुआ, शुक्रं = तेजस्वी, कविः = क्रान्तद्रश्टा, मनीशी = प्रज्ञावान्, परिभूः = जनयिता, स्वयंभू = स्वतः उत्पन्न, याथातथ्यतः = यथावत् रूप में, शाश्वतीभ्यः समाभ्यः = चिरकाल से, अर्थान् = लौकिक पदार्थों को, व्यदधात् = धारण किया है।

अनुवाद

वह आत्मा (परम रूप में ईश्वर होकर) सर्वत्र व्यापक एवं सक्रिय है। वह शरीर से रहित, नसों - नाड़ियों से रहित, घाव आदि से रहित, शुद्धता से परिपूर्ण, पाप से अनाबद्ध, तेजस्वी, क्रान्तद्रष्टा, प्राज्ञ एवं लोकों का उत्पादयिता है। वह स्वयं उत्पन्न हुआ है। यथावत् रूप में उसने चिरकाल से सम्पूर्ण लौकिक पदार्थों को अपने में धारण कर रखा है।

संस्कृत व्याख्या

सः = परं ब्रह्म, परि = परितः सर्वत्र वेत्याशयः, अगात् = गतवानस्ति। अकायं = शरीररहितः, अस्नाविरं = स्नायुरहितः, अव्रणं = व्रणरहितः, शुद्धं = दोषशून्यः, अपापविद्धं = पापैरनाबद्धः, शुक्रं = दीप्तिमयः, कविः = क्रान्तदर्शी, मनीशी = प्राज्ञः, परिभूः = जनयिता, स्वयम्भूः = अनादिः, यथातथ्यतः = यथावत्रूपेण, शाश्वतीभ्यः समास्यः = चिरन्तनकालात्, अर्थान् = लौकिकपदार्थान्, व्यदधात् = आधत्तवानस्ति।

शांकरभाष्य

स यथोक्त आत्मा पर्यगात् परि समन्तादगादतवान् आकाशवद् व्यापी इत्यर्थः। शुक्रं शुद्धं ज्योति मद्दीप्तिमानित्यर्थः। अकायमशरीरो लिंगशरीरवर्जित इत्यर्थः। अव्रणम् अक्षतम्। अस्नाविरम् स्नावः शिराः यस्मिन्न विद्यन्त इत्यस्नाविरम्। अव्रणमस्नाविर् इत्याभ्यां स्थूलशरीरप्रतिषेधः। शुद्धं निर्मलमविद्यामलरहितमिति कारणशरीरप्रतिषेधः। अपापविद्धं धर्माधर्मादिपापवर्जितम्।

शुक्रमित्यादीनि वचांसि पुल्लिंगत्वेन परिणेयानि। स पर्यगादित्युपक्रम्य कविर्मनीषीत्यादिना पुल्लिंगत्वेनोपसंहारात्।

कविः क्रान्तदर्शी सर्वदृक्। 'नान्योऽतोऽस्ति, द्रष्टा' (बश.उ. 3/8/11) इत्यादि श्रुतेः। मनीषी मनस ईषिता सर्वज्ञ ईश्वर इत्यर्थः। परिभूः सर्वेषां पर्युपरि भवतीति परिभूः। स्वयम्भूः स्वयमेव भवतीति। येषामुपरि भवति यश्चोपरि भवति स सर्वः स्वयमेव भवतीति स्वयम्भूः।

स नित्यमुक्त ईश्वरो याथातथ्यतः सर्वज्ञत्वाद्यथातथाभावो याथातथ्यं तस्माद्यथाभूतकर्मफलसाधनतोऽर्थान् कर्त्तव्यपदार्थान् व्यदधाद्विहितवान् यथानुरूपं व्यभजदित्यर्थः। शाश्वतीभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः संवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्यः इत्यर्थः।

वह पूर्वोक्त आत्मा पर्यगात् परि-सब ओर अगात्-गया हुआ है अर्थात् आकाश के समान सर्वव्यापक है, शुक्र-शुद्ध-ज्योतिष्मान् यानी दीप्तिवाला है, अकाय - अशरीरी अर्थात् लिंग-शरीर से रहित है; अव्रण यानी अक्षत है; अस्नाविर है, जिसमें स्नायु अर्थात् शिराएँ न हों उसे अस्त्रविर कहते हैं। अव्रण और अस्त्रविर - इन दो विशेषणों से स्थूल शरीर का प्रतिषेध किया गया है तथा शुद्ध, निर्मल यानी अविद्यारूप मल से रहित है - इसके कारण-शरीर का प्रतिषेध किया गया है। अपापविद्ध-धर्म-अधर्मरूप पाप से रहित है।

'शुक्रम्' इत्यादि (नपुंसकलिंग) वचनों को पुलिंग में परिणत कर लेना चाहिये; क्योंकि 'स पर्यगात्' इस पद से आरम्भ करके 'कविः मनीषी' आदि शब्दों द्वारा पुलिंग रूप से ही उपसंहार किया है।

कवि-क्रान्तदर्शी यानी सर्वदृक् है। जैसा कि श्रुति कहती है - 'इससे अन्य कोई और द्रष्टा नहीं है।' मनीषी - मन का ईशन करने वाला अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर। परिभू - सबके परि अर्थात् ऊपर है इसलिये परिभू है। स्वयम्भू - स्वयं ही होता है। (इसलिये स्वम्भू है) अथवा जिनके ऊपर है और जो ऊपर है वह सब स्वयं ही है, इसलिये स्वयम्भू है।

उस नित्यमुक्त ईश्वर ने सर्वज्ञ होने के कारण यथाभूत कर्म, फल, और साधन के अनुसार अर्थों - कर्त्तव्य पदार्थों का याथातथ्य विधान किया अर्थात् रीति से उनका विभाग किया। यथा-तथा के भाव को याथातथ्य कहते हैं। (उसने) शाश्वत - नित्य समाओं अर्थात् संवत्सर नामक प्रजापतियों को (उनकी योग्यता के अनुसार पृथक-पृथक कर्त्तव्य बाँट दिये)

अत्रद्येन मंत्रेण सर्वेषणापरित्यागेन ज्ञाननिष्ठोक्ता प्रथमो वेदार्थः 'ईशावास्यमिदं सर्वं मा गृधः कस्य स्विद् धनम्' इत्यज्ञानां जिजीविषूणां ज्ञाननिष्ठासम्भवे ''कुर्वन्नवेह कर्माणिकृ जिजीविषेत्'' इत कर्मनिष्ठोक्ता द्वितीयो वेदार्थः।

अनयोश्च निष्ठयोर्विभागो मन्त्रप्रदर्शितयोर्बृहदारण्यकेऽपि प्रदर्शितः। 'सोऽकामयत जाया में स्यात्' (ब. उ. 1/4/17) इत्यादिनाऽज्ञस्य कामिनः कर्माणीति। "मन एवास्यात्मा वाग्जाया' (ब. उ. 1/4/17) इत्यादिवचनादज्ञत्वं कामित्वञ्च कर्मनिष्ठस्य निश्चितमवगम्यते। तथा च तत्फलं सप्तान्नसर्गस्तेश्वात्मभावेनात्मस्वरूपावस्थानम्।

जायाद्येषणात्रयसंन्यासेन चात्मविदां कर्मनिष्ठाप्रातिकूल्येनात्मस्वरूपनिष्ठैव दर्शिता "किं प्रजया करिश्यामो येषां नेयमात्मायं लोकः" (ब. उ. 4/4/22) इत्यादिना। ये तु ज्ञाननिष्ठाः संन्यासिनस्तेभ्योऽसुर्या नाम इत्यादिना अविद्वन्निवाद्वारेण आत्मनो याथात्म्यं स पर्यगात् इत्येतदन्तैर्मन्त्रैरुपदिष्टम्। ते ह्यत्रधिकृता न कामिन इति। तथा च श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषद्। "अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृशिसंघजुष्टम्" (श्वेता. उ. 6/21) इत्यादि विभज्योक्तम्।

सारस्वती व्याख्या

परमात्मा ने अनादि अनन्तकालीन इस यथार्थ जगत् की अपनी इच्छा से रचना की है। आत्मा (परमेश्वर) सर्वदृष्ट है। वह सबको अपने नियंत्रण में रखता है एवं सर्वोपरि विद्यमान और अजन्मा है।

टिप्पणी

सन्धि

पर्यगात् = परि + अगात् (यण्), अगाच्छुक्रम = अगात् + शुक्रम (छत्व, तुगागम), कविर्मनीषी = कविः + मनीषी (विसर्गसंधिः) यथातथ्यतोऽर्थान् = यथातथ्यतः + अर्थान् (पूर्वरूप)

समासपदानि

अकायं = नास्ति कायः यस्य तम् (नञ्बहु), अव्रणणम् = नास्ति व्रणो यस्य तम् (नञ्बहु), अस्नाविरं = न सन्ति स्नायवो यस्य तम् (नञ् उपपद), अपापविद्धं = न पापैर्विद्धं (नञ्तत्पु)। परिभूः = परितो भवतीति (उपपद), स्वयंभूः = स्वयं भवतीति (उपपद)।

व्युत्पत्ति

अगात् = गम् + लुङ् (तिप्) - प्रथम पुरुष, एकवचन। अस्नाविरम् = न + स्नाव् + इरच् + अम् - द्वितीया, एकवचन। शुद्धम् = शुध् + क्त + अम्-द्वितीया, एकवचन।

प्रसंग - कर्म एवं उपासना का निरूपण

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।9।।

Translitration

Andhan tamah prawïshantï yééwïdyāmupāsaté tatö bhüya ïwa té tamö ya u wïdyayāṃ ratāh.

Translation

Those who follow the path of avidya, enter into blinding darkness. More than that, those who are engrossed in vidya, also enter in the great blinding darkness.

पद्यानुवाद

जो उपासना करता रहता अपने आप अविद्या का।
वह करता तम में प्रवेश तब ज्योति न पाता विद्या का।।
मिथ्याभिमान में मत्त रहे औ ज्ञान बताते विद्या का।
घोर तमिस्रा में पड़ जाते नाम न जाने विद्या का ।।

पदच्छेद

अन्धम् तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते। ततः भूय इव ते तमः ये उ विद्यायाम् रताः।।

अन्वय

ये अविद्याम् उपासते (ते) अन्धं तमः प्रविशन्ति। ये उ विद्यायां रताः ते ततः भूयः तमः (प्रविशन्ति) इव।

शब्दार्थ

ये = जो, अविद्यां = अज्ञान को, उपासते = उपासना करते हैं, ते = वे, अन्धं तमः = गाढ़ान्धकार में, प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं, ये उ = और जो, विद्यायां = ज्ञान में, रताः = लीन हैं, ततः = उससे, भूयः = अधिक, तमः = अन्धकार में, इव = मानो।

अनुवाद

जो प्राणी ज्ञानमार्ग को छोड़कर अज्ञान अथवा माया की उपासना करते हैं, वे हीनकोटि के लौकिक प्राणी अज्ञान के गाढे अंधेरे में प्रवेश करते हैं, और जो प्राणी ज्ञानमार्ग में तल्लीन रहते हैं, वे उससे भी अधिक गहन अन्धकार में मानो प्रवेश करते हैं (अर्थात् लोक में अपेक्षाकृत अधिक कष्टप्रद स्थिति को प्राप्त करते हैं)

संस्कृत व्याख्या

ये = येऽपि प्राणिनः, अविद्याम् = मायाम् अज्ञानं वा, उपासते = आलम्बन्ते, ते = ते जनाः, अन्धं = प्रगाढं, तमः = अन्धकारं, प्रविशन्ति = उपयान्ति, ये = ये च इतरे प्राणिनः, विद्यायां = ज्ञानरूपिण्यात्मनि, रताः = तल्लीनाः सन्ति, ते ततः = तस्मादपि, भूयः = अधिकं, तमः = अन्धकारं प्रयान्तीव। इवात्रेत्प्रेक्षायाम्।

शांकरभाष्य

कथं पुनरेवमवगम्यते न तु सर्वेषामिति? उच्यते, अकामिनः साध्यसाधनभेदोपमर्देन 'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।' तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः, इति यदात्मैकत्वविज्ञानमुक्तम् तन्न, केनचित् कर्मणा ज्ञानान्तरेण वा ह्यमूढः समुच्चिचीषति। इह तु समुच्चिचीषया अविद्वदादिनिन्द क्रियते। तत्र च यस्य तेन समुच्चयः सम्भवति, न्यायतः शास्त्रतो वा तदिहोच्यते यद्दैवं वित्तं देवताविषयं ज्ञानं कर्मसम्बन्धित्वेनोपन्यस्तं न परमात्मज्ञानम्

'विद्यया देवलोकः' (ब. उ. 1/5/16) इति पश्थक् फलश्रवणात्। तयोर्ज्ञानकर्मणोरिह एकैकानुष्ठाननिन्दासमुच्चिचीशया न निन्दापरैव एकैकस्य पृथक्फलश्रवणात् ''विद्यया तदारोहन्ति', 'विद्यया देवलोकः'। न तत्र दक्षिणायन्ति कर्मणा पितृलोकः (ब. उ. 1/5/26) इति न हि शास्त्रविहितं किञ्चिदकर्त्तव्यतामियात्।

तत्रान्धन्तमोऽदर्शनात्मकं तमः प्रविशन्ति। के? ये विद्यां। विद्याया अन्या अविद्यास्ताः कर्म इत्यर्थः, कर्मणो विद्याविरोधित्वात्, तामविद्यामग्निहोत्रदिलक्षणामेव केवलामुपासते, तत्पराः सन्तोऽनुतिष्ठन्तीत्यभिप्रायः। ततस्तस्मादन्धात्मकात्तमसो भूय इव बहुतरमेव ते तमः प्रविशन्ति। कर्म हित्वा ये उ ये तु विद्यायामेव देवताज्ञान एव रता अभिरताः। तत्रावान्तरफलभेदं विद्याकर्मणोः समुच्चयकारणमाह, अन्यथा फलवदफलवतोः सन्निहितयोरंगांगितैव स्याद् इत्यर्थः।

पूर्व. यह कैसे ज्ञात होता है कि (यह विधि कर्मनिष्ठों के ही लिये है) सबके लिये नहीं है ?

सिद्धान्ती बतलाते हैं, (सुनो) निष्काम पुरुष के लिये जो 'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इस मन्त्र से साध्य और साधन के भेद का निराकरण करते हुए आत्मा के एकत्व का ज्ञान प्रतिपादन किया है, उसे कोई भी विचारवान् किसी भी कर्म या अन्य ज्ञान के साथ मिलाना नहीं चाहेगा। यहाँ तो समुच्चय की इच्छा से ही अविद्वान् आदि की निन्दा की है। अतः न्याय और शास्त्र के अनुसार जिसका जिसके साथ समुच्चय हो सकता

है, वही यहाँ कहा गया है। सो कर्म के सम्बन्धी रूप से यहाँ दैव वित्त अर्थात् देवता सम्बन्धी ज्ञान का ही उल्लेख हुआ है परमात्म ज्ञान का नहीं, क्योंकि 'विद्या से देवलोक प्राप्त होता है' (ऐसा इस ज्ञान का आत्मज्ञान से) पृथक् फल सुना गया है। उन ज्ञान और कर्म में से, यहाँ जो एक-एक के अनुष्ठान की निन्दा की है, वह समुच्चय के अभिप्राय से है, निन्दा के ही लिये नहीं, क्योंकि 'उस पद पर विद्या (देवता ज्ञान) - से आरूढ़ होते हैं 'विद्या से देवलोक की प्राप्ति होती है' 'वहाँ दक्षिण मार्ग से जाने वाले नहीं पहुँचते' 'कर्म से पितृलोक मिलता है' इत्यादि एक-एक का पृथक् फल बतलाने वाली श्रुतियाँ भी मिलती हैं; और शास्त्रविहित कोई भी बात अकर्तव्य नहीं हो सकती।

उनमें वे तो अज्ञान रूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं। कौन ? जो अविद्या - विद्या से अन्य अविद्या अर्थात् कर्म यानी केवल अग्निहोत्रादि रूप अविद्या ही की उपासना करते हैं, अर्थात् तत्पर होकर कर्म का ही अनुष्ठान करते रहते हैं; क्योंकि कर्म विद्या (आत्मज्ञान) - के विरोधी हैं (इसलिये उन्हें अविद्या कहा गया है)। तथा उस अन्धकार से भी कहीं अधिक अन्धकार में वे प्रवेश करते हैं, कौन? जो कर्म करना छोड़कर केवल विद्या यानी देवताज्ञान में ही रत-अनुरक्त हैं। विद्या और कर्म के अवान्तर फल-भेद को ही इसके समुच्चय का कारण बतलाते हैं; नहीं तो एक-दूसरे के समीप हुए फलयुक्त और फलहीन परस्पर अंग और अंगी हो जायँगे (अर्थात् फलयुक्त तो अंगी (मुख्य) हो जायेगा तथा फलहीन अंग (गौण) समझा जायेगा) यही इसका अभिप्राय है।

सारस्वती व्याख्या

कर्म एवं ज्ञान दोनों की उपासना करनी चाहिए। 'विद्या' का अर्थ 'आत्मज्ञान' है एवं आत्मज्ञान भिन्न ज्ञान 'अविद्या' है जो आत्मज्ञानरूपी विद्या का अनादर कर मात्र अविद्या या लोकोपचार में लगे हैं। वे भोगेच्छा एवं स्वार्थ के दलदल में फँस कर अंधकार में प्रविष्ट होते है तथा जो केवल आत्मविद्या में लगे हैं एवं लोकोपचार को त्याग दिये हैं। वे विविध साधनों के अभाव में अपनी जीवनयात्रा को ही विषम परिस्थिति में डाल दिये हैं। इस विषमावस्था के कारण वे आत्मसाक्षात्कार करने में असमर्थ हैं। इस प्रकार वे और गहरे अन्धकार में प्रवेश कर जाते हैं जहाँ से मुक्त होना कठिन है।

टिप्पणी

सन्धि

येऽविद्यामुपासते = ये + अविद्याम् (पूर्वरूप) + उपासते। ततो भूय इव = ततः + भूयः + इव (उत्व, विसर्गलोप)। य उ = ये + उ।

समास

अविद्याम् = न विद्येति, ताम् (नञ्तत्पु0)।

व्युत्पत्ति

प्रविशन्ति = प्र + विश् + झि (लट्) - प्रथमपुरुष, बहुवचन। उपासते = उप + आस् + झ (लट्) - प्रथमपुरुष, बहुवचन। रताः = रम् + क्त + जस्।

प्रसंग - कर्म एवं उपासना का फल

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।।10।।

Translitration

Anya déwa āhurvïdyayā anyadāhuh awïdyayā,
Itï shushrma dhērāṅāṁ yé nastad vïchachakshïré

Translation

We have heard from the wise ones, who explained to us that, thus definitely through vidya it is different, and through avidya it is different; so it is explained.

पद्यानुवाद

यथाज्ञान का जो नर करते भली-भांति सुन्दर अनुष्ठान।
इस विद्या का फल अनन्त है शुद्ध ब्रह्म का होता ज्ञान।।
कर्मों का कर अनुष्ठान जो यथार्थ रूप से रहते जान।
इसे अविद्या ही कहते हैं इसका फल भी वैसा जान।।
ज्ञानाभिमान में रत जो रहता स्वेच्छाचारी बनकर रहता।
यथार्थ ज्ञान का उत्तम फल तो इससे भिन्न सदा ही रहता।।
सकाम भाव से किए कर्म का जो कुछ फल मिल जाता है।
यथार्थकर्म सेवनका फल तो इससे भिन्न कहाता है ।।

पदच्छेद

अन्यत् एव आहुः विद्यया, अन्यत् आहुः अविद्यया। इति शुश्रुमः धीराणाम् ये नः तद् विचचक्षिरे।।

अन्वय

विद्यया अन्यत् एव आहुः, अविद्यया अन्यत् आहुः। इति धीराणां शुश्रुमः ये नः तत् विचचक्षिरे।

शब्दार्थ

विद्यया = विद्या अथवा ज्ञान से, अन्यत् = अन्य, एव = ही, आहुः = कहते हैं, अविद्यया = अज्ञान से, अन्यत् = भिन्न, इति = यह, धीराणां = धीर पुरुषों या विज्ञ जनों का, शुश्रुमः = सुनते हैं, ये = जो, नः = हमको, तत् = उसे, विचचक्षिरे = उपदेश द्वारा बतलाते हैं।

अनुवाद

विद्यारूपी आत्मज्ञान से अन्य फल की प्राप्ति होती है तथा अविद्यारूपी अज्ञान से भिन्न फल की, ऐसा विद्वानों ने कहा है। धीर पुरुषों के ऐसे वचन भी हम सुनते रहे हैं, जिन्होंने हमको उस विषय में भलीभाँति व्याख्या कर उपदेश किया था।

संस्कृत व्याख्या

विद्यया = ज्ञानरूपात्मोपासनेन परमात्मानुष्ठानेन वा, अन्यत् = पृथगेव फलं लभन्ते प्राणिन इति, आहुः = विज्ञजनाः कथयन्ति। अविद्यया = माया रूपोपकल्पित-देवोपासनेन अज्ञानानुष्ठानेन वा, अन्यत् = पश्थक् फलं लभन्ते इत्यपि, आहुः = कथयन्ति। इति = इत्थं फलभेदप्रतिपादनं, धीराणां = धीमतां मुखेभ्यः, शश्रुमः = वयमाकर्णयामः ये = ये हि विज्ञाः धीमन्तो वा, नः = अस्मभ्यं, तत् = आत्मज्ञानफलं, विचचक्षिरे = विशेषेण व्याख्यातवन्तः।

शांकरभाष्य

अन्यत्प थगेव विद्यया क्रियते फलमित्याहुर्वदन्ति देवलोकः, ''विद्यया' (ब.उ. 1, 5/16) ''विद्यया तदारोहन्ति'' इति श्रुतेः। अन्यदाहुरविद्यया कर्मणा क्रियते ''कर्मणा पितृलोकः'' (ब. उ. 1/5/16) इति श्रुतेः। इत्येवं शुश्रुम श्रुतवन्तो वयं धीराणां धीमतां वचनम्। ये आचार्या नोऽस्मभ्यं तत्कर्म च ज्ञानं च विचचक्षिरे व्याख्यातवन्तस्तेऽयमागमः पारम्पर्यागत इत्यर्थः।

'विद्या से देवलोक प्राप्त होता है' 'विद्या से उस पर आरूढ़ होते हैं' ऐसी श्रुतियों के अनुसार वेदवेत्ता लोग कहते हैं कि विद्या से और ही फल मिलता है। तथा 'कर्म से पितृलोक मिलता है' इस श्रुति के अनुसार, अविद्या यानी कर्म से और ही फल होता है - ऐसा उनका कथन है। ऐसे हमने धीर अर्थात् बुद्धिमानों के वचन सुने हैं, जिन आचार्यों ने हमसे उस कर्म तथा ज्ञान का व्याख्यान किया था अर्थात् उनकी व्याख्या की थी। तात्पर्य यह है कि यह उनका परम्परागत आगम है।

सारस्वती व्याख्या

यहाँ विद्या एवं अविद्या दोनों के फलों का प्रलोभनरूप में वर्णन किया गया है।

जब मनुष्य प्रलोभनवश अविद्या में जाता है तो ऐहिक भोग के साधन के साथ इहलौकिक ऐश्वर्य को प्राप्त करता है एवं उत्तरोत्तर प्रलोभन बढ़ते ही जाते हैं।

पुनः जब मनुष्य विद्या के पक्ष में जाता है तो आत्मज्ञान से उसे ऐहिक एवं आमुष्मिक शान्ति प्राप्त होती है। पुनः जीवन-यात्रा के निमित कार्यों की अवहेलना होने लगती है एवं जीवन निर्वाह हेतु संसाधनों की कमी के कारण मनुष्य की सफलता में सर्वाधिक कठिनाई होती है। अतः विद्या एवं अविद्या दोनों से लाभ लेना ही सच्चे धीर पुरुष की पहचान है।

टिप्पणी

सन्धि

अन्यदेवाहुर्विद्यया = अन्यत् + एव + आहुः + विद्यया (दीर्घसंधि, विसर्गसंधि) अन्यदाहुरविद्यया = अन्यत् + आहुः + अविद्यया (विसर्गसंधि)। नस्तद् = नः + तत् (विसर्ग संधि)

समासपदानि

आहुः = ब्रू + उस् (लट्) - प्रथमपुरुष, बहुवचन। शुश्रुम = श्रु + मस् (लट्) - छान्दस। नः = अस्मत् + भ्यस्। विचचक्षिरे = वि + चक्ष् + उस् (इरेच्)-लिट् (प्रथमपुरुष, बहुवचन)।

प्रसंग - विद्या से अमरत्व की प्राप्ति

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।11।।

Translitration

Wïdyāṁ cha awïdyāṁ cha yastad védöbhayaṃ saha,
Awïdyayā mrityuṁ tërtwā wïdyayā amritam ashnuté

Translation

One who knows both vidya and avidya overcomes death by avidya and achieves immortality through vidya.

पद्यानुवाद

विद्या और अविद्या के तत्वों को जो नर लेता जान।
ज्ञान तत्व और कर्म तत्व इन दोनों की करता पहचान।।
कर्मों का कर अनुष्ठान वह मृत्यु पार कर जाता है।

कर अनुष्ठान ज्ञान का समुचित अमृत भी पा जाता है।।

पदच्छेद

विद्याम् च अविद्याम् च यः तद् वेद उभयम् सह। अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते।।

अन्वय

यः विद्यां च अविद्यां च तत् उभयं सह वेद। सः अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते।

शब्दार्थ

यः = जो, विद्यां = विद्या को, अविद्यां च = अज्ञान को, तत् उभयं = उक्त दोनों को, सह = साथ-साथ, वेद = जानता है। अविद्यया = अज्ञान से, मृत्युं = मरण को, तीर्त्वा = पार कर, विद्यया = ज्ञान से, अमृतम् = अमरता को, अश्नुते = प्राप्त करता है।

अनुवाद

जो आत्मज्ञानरूपी विद्या तथा सृष्टिविज्ञानरूपी अविद्या दोनों को साथ-साथ जानता है, वह साधक सृष्टिविज्ञानरूपी अविद्या के द्वारा मृत्यु को दूर करके आत्मज्ञान द्वारा अमरता की प्राप्ति करता है।

शांकरभाष्य

यत एवमतो विद्यां चाविद्यां च देवताज्ञानं कर्म चेत्यर्थः यस्तदेतदुभयं सहैकेन पुरुषेण अनुष्ठेयं वेद तस्यैवं समुच्चयकारिण एव एकपुरुषार्थसम्बन्धः क्रमेण स्यादित्युच्यते। अविद्यया कर्मणा अग्निहोत्रादिना मृत्युं स्वाभाविकं कर्म ज्ञानं च मृत्युशब्दवाच्यमुभयं तीर्त्वातिक्रम्य विद्यया देवताज्ञानेनामश्तं देवतात्वभावमश्नुते प्राप्नोति। तद्धि अमृतमुच्यते यद्देवतात्मगमनम्।

क्योंकि ऐसा है इसलिये विद्या और अविद्या अर्थात् देवता ज्ञान और कर्म - इन दोनों को जो एक साथ एक ही पुरुष से अनुष्ठान किये जाने योग्य जानता है इस प्रकार समुच्चय करने वाले को ही एक पुरुषार्थ का सम्बन्ध क्रमशः होता है - यही अब कहा जाता है।

अविद्या अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म से मृत्यु यानी 'मृत्यु' शब्द वाच्य स्वाभाविक (व्यावहारिक) कर्म और ज्ञान - इन दोंनो को तरकर - पार करके विद्या अर्थात् देवता ज्ञान से अमश्त यानी देवतात्म भाव को प्राप्त हो जाता है। देवत्वभाव जो प्राप्त होना है वही अमृत कहा जाता है।

सारस्वती व्याख्या

अविद्या (कर्म) के द्वारा चित्त को शुद्ध करके विद्या (ब्रह्मज्ञान) द्वारा अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करना चाहिए। सातवलेकर ने माना है कि जो आत्मज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान इन दोनों को एकत्र जानता है, वह प्रकृति-विज्ञान से मृत्यु को दूर करके आत्मज्ञान से अमरत्व-मोक्ष को प्राप्त करता है। दोनों विद्याओं के समन्वय का आदेश है - मनुष्य सृष्टिविद्या सीखकर यहाँ अपनी जीवन-यात्रा सुखमय करे और आत्मविद्या से अपने पारमार्थिक परम कल्याण को सिद्ध करें।

अरविन्द और राधाकृष्णन् के अनुसार 'जो विद्या और अविद्या को एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरता प्राप्त करता है। विद्या को आत्मिक ज्ञान और अविद्या को भौतिक ज्ञान अथवा विद्या को सैद्धान्तिक ज्ञान और अविद्या को व्यावहारिक ज्ञान के अर्थ में ग्रहण करने वाले विद्वानों के अनुसार यह मंत्र जीवन की पूर्णता और सफलता के लिए दोनों के समुचित समन्वय का वैदिक निर्देश है।

संस्कृत व्याख्या

यः = योऽप्यात्मज्ञानोपासकः प्राणी, विद्यां च = ज्ञानरूपिणं परमात्मानं च, अविद्यां च = मायारूपिणं देवतारं च, तत् उभयं = ज्ञानाज्ञानात्मकमीश्वरं, सह = समेकितरूपेण, वेद = जानाति, सः = तादृशः साधकः, अविद्यया = मायया, मृत्युं =मरणं, तीर्त्वा = अतीत्य, विद्यया = ज्ञानेन, अमृतं = अमरत्वम्, अश्नुते = प्राप्नोति।

टिप्पणी

सन्धि

चाविद्यां = च + अविद्याम् (दीर्घसंधि), यस्तद् = यः + तत् (विसर्गसंधि), वेदोभयं = वेदं + उभयम् (गुणसंधि), विद्ययाऽमृतम् = विद्यया + अमृतम् (दीर्घसंधि)।

व्युत्पत्ति

वेद = विद् + णल् (लट्) - प्रथमपुरुष-एकवचन। तीर्त्वा = तॄ + क्त्वा। अश्नुते = अश् + त (क्रयादि - आत्मने) - प्रथमपुरुष, एकवचन।

प्रसंग - सम्भूति एवं असम्भूति का फल

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः।।12।।

Translitration

Andhaṁ tamah prawïshantï yéésambhütïm upāsaté,

tatö bhüya ïwa té tamö ya u sambhütyāṃ ratāh.

Translation

Those who worship the unmanifested reality enter into an inscrulable darkness. Those who worship the obvions truth do enter into a denser realm of darkness.

पद्यानुवाद

नाशशील देवों पितरों की पूजा जो नर करते हैं।
अज्ञानी वे घोर तमस् में अपने आकर गिरते हैं।।
अविनाशी ईश्वर की पूजा झूठ-दर्प से करते हैं।
बढ़कर उनसे गहन गर्त्त में तम के आकर पड़ते हैं।।

पदच्छेद

अन्धम् तमः प्रविशन्ति, ये असम्भूतिम् उपासते। ततः भूयः इव ते तमः, ये उ सम्भूत्याम् रताः।।

अन्वय

ये असम्भूतिम् उपासते (ते) अन्धं तमः प्रविशन्ति। ये उ सम्भूत्यां रताः ते ततः भूयः तमः (प्रविशन्ति) इव।

शब्दार्थ

ये = जो, असम्भूतिम् = असंहत भाव की, उपासते = उपासना करते हैं, अन्धं तमः = प्रगाढ़ अन्धकार में, प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं, सम्भूत्यां = संहत भाव में, रताः = लगे हुए, ते = वे, ततः = उससे, भूयः = अधिक, तमः = अन्धकार में। इव = मानो।

अनुवाद

जो साधक व्यष्टिरूप में (ईश्वर के किसी स्वरूपविशेष की) उपासना करते हैं, वे निश्चय ही अज्ञान के गहन अन्धकार में प्रवेश प्राप्त करते हैं, किन्तु जो साधक समष्टिरूप में (एक मात्र ब्रह्म की उपासना में) ही लगे रहते हैं, वे मानो उससे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

संस्कृत व्याख्या

ये = येऽप्यात्मसाधकाः, असम्भूतिं = असंहतिम्, उपासते = अनुतिष्ठन्ति, ते, अन्धं = प्रगाढं, तमः = अन्धकारं, प्रविशन्ति = गाहन्ते, ये उ = ये चान्ये साधकाः, सम्भूत्यां = संहत्यामेव, रताः = संलग्नाः सन्ति, ते = तादृशा ब्रह्मज्ञानिनोऽपि, ततः = तस्मादपि, भूयः = अधिकं, तमः = अन्धकारं गाहन्ते इव। इवोत्प्रेक्षायाम्।

शांकरभाष्य

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये असम्भूतिं सम्भवनं सम्भूतिः सा यस्य कार्यस्य सा सम्भूतिः तस्या अन्या असम्भूतिः प्रकृतिः कारणमविद्या अव्याकृताख्या तामसम्भूतिमव्याक ताख्यां प्रकृतिं कारणविद्यां कामकर्मबीजभूतामदर्शनात्मिकामुपासते ये ते तदनुरूपमेवान्धं तमोऽदर्शनात्मकं प्रविशन्ति। ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमः प्रविशन्ति व उ सम्भूत्यां कार्यब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः।

जो असम्भूति की उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। सम्भवन (उत्पन्न होने) का नाम सम्भूति है। वह जिस कार्य का धर्म है, उसे 'सम्भूति' कहते हैं। उससे अन्य असम्भूति-प्रकृति-कारण अथवा अव्याकृत नाम की अविद्या है। उस असम्भूति यानी अव्याकृत नाम वाली प्रकृति-कारण अर्थात् अज्ञानात्मिका अविद्या की जो कि कामना और कर्म की बीज है, जो लोग उपासना करते हैं, वे उसके अनुरूप ही अज्ञानरूप घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं तथा जो सम्भूति यानी हिरण्यगर्भ नामक कार्यब्रह्म में रत हैं, वे तो उससे भी गहरे-मानो अधिकतर अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

सारस्वती व्याख्या

'विद्या' एवं 'अविद्या' के बाद समान शैली में 'असम्भूति' एवं 'सम्भूति' का वर्णन है। सामान्यतः 'सम्भवन' का नाम 'सम्भूति' है। अतः 'उत्पन्न होना' जिसका धर्म है, वह 'कार्य' सम्भूति है। 'हिरण्यगर्भ' को आदि कार्य माना जाता है, इसलिए शंकराचार्य के अनुसार हिरण्यगर्भ नामक कार्यब्रह्म ही यहाँ 'सम्भूति' शब्द से वाच्य है। यह ब्रह्म की पहली अभिव्यक्ति है एवं इसे 'व्याकृत कार्य' भी कहा जाता है। माया की उपाधि से संयुक्त ब्रह्म जगत् सृष्टि का कारण है। इसे वेदान्त में अपरब्रह्म, सगुणब्रह्म, कार्यब्रह्म, हिरण्यगर्भ, सूत्रात्मा आदि नामों से अभिहित किया गया है। 'हिरण्यगर्भ' जगत के आरम्भ में उत्पन्न होता है और हर बार जगत् के अन्त में लुप्त हो जाता है। शंकराचार्य आदि ने 'सम्भूति' से कार्यब्रह्म 'हिरण्यगर्भ' का अर्थ ग्रहण किया है। सम्भूति से अन्य 'असम्भूति' है, यह कार्यभिन्नाकरणस्वरूपा प्रकृति है। असम्भूति सभी कार्यों की बीजरूपा है। इसकी उत्पत्ति नहीं होती है अतः 'अव्याकृत प्रकृति' है।

असम्भूति को 'अव्यक्त' भी कहते हैं। समस्त कामना और कर्म का मूल 'अविद्या' है, यही मिथ्याभूत संसार-प्रपंच की बीजभूता है। अतः अज्ञानात्मिका अविद्या यहाँ 'असम्भूति' नाम से ग्राह्य है। अद्वैत में अविद्या या अज्ञान को ईश्वर की मायाशक्ति और प्रकृति कहते हैं।

स्वामी दयानन्द के अनुसार - जो लोग परमेश्वर को छोड़कर अनादि, अनुत्पन्न, सगुण प्रकृति नामक जड़ वस्तु को उपासनीय समझते हैं, वे आवरक अन्धकार में प्रकर्ष से प्रवेश करते हैं, और जो लोग महत्तत्वादि स्वरूप में परिणत हुई सृष्टि में रमण करने वाले हैं, वे निस्सन्देह उससे कहीं अधिक अविद्यारूप अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं।

टिप्पणी

सन्धि

येऽसम्भूतिम् = ये + असम्भूतिम् (पूर्वरूप), ततो भूयः = ततः + (उत्व)। य उ = ये + उ (एत्वलोप)

समास

असम्भूतिं = सम्यक् भवतीति सम्भूतिः, न सम्भूतिरित्यसम्भूतिः नञ्तत्पु0)

व्युत्पत्ति

प्रविशन्ति = प्र + विश् + झि (लट्) प्रथमपुरुष, बहुवचन। असम्भूतिम् = न + सम् + भू + क्तिन् + अम् द्वितीया, एकवचन। उपासते = उप + आस् + झ (लट्) - आत्मने - प्रथमपुरुष, बहुवचन। सम्भूत्यां = सम् + भू + क्तिन् + ङि. - सप्तमी, एकवचन।

प्रसंग - सम्भूति एवं असम्भूति की पृथक् फलवत्ता का प्रतिपादन

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।13।।

Translitration

Anyadéwāhuh sambhawāt anyadāhuh asambhawāt,
Ïtï shushruma dhērāṅāṁ yé nastad wïchachakshïré.

Translation

By meditating on the manifest, definitely a different thing is obtained and by meditation on the unmanifest something else is obtained – that is what they say.

पद्यानुवाद

अविनाशी ब्रह्म उपासक को सुन्दर फल मिलता रहता है।
ढोंगी झूठ उपासक को इससे अन्यत् फल मिलता है।।
विनाशशील देवों की पूजा निष्काम भाव जो करता है।

सकाम भाव के पूजक को तो अन्यत् फल ही मिलता है।।

पदच्छेद

अन्यत् एव आहुः सम्भवात्, अन्यत् आहुः असम्भवात्। इति शुश्रुमः धीराणाम् ये नः तत् विचचक्षिरे।

अन्वय

सम्भवात् अन्यत् एव आहुः, असम्भवात् अन्यत् आहुः। इति धीराणां शुश्रुमः ये नः तत् विचचक्षिरे।

शब्दार्थ

सम्भवात् = समष्टिरूप में ब्रह्म की उपासना से, अन्यत् = अन्य फल मिलता है, आहुः = कहते हैं। असम्भवात् = व्यष्टिरूप में ईश्वरोपासना से, अन्यत् = अन्य फल। इति = ऐसा, शुश्रुमः = सुना है, धीराणां = धीर पुरुषों के, ये = जो, नः = हमको, तत् = उसे, विचचक्षिरे = कहा था।

अनुवाद

समष्टिरूप में ब्रह्म की उपासना से अन्य ही फल की प्राप्ति होती है, ऐसा विज्ञजन कहते हैं। व्यष्टिरूप ईश्वर की उपासना से भिन्न फलप्राप्ति बतायी गयी है, ऐसा भी कहा जाता है। धीर पुरुषों से हमने ऐसा ही सुना है, जिन्होंने हमें इस विषय का व्याख्यापूर्वक उपदेश दिया था।

संस्कृत व्याख्या

सम्भवात् = संहतिभावस्य उपासनात्, अन्यत् = पृथक्फलावाप्तिः एव = मात्रं, आहुः = विज्ञैरूदीरिता। असम्भवात् = असंहतिभावस्यानुष्ठानात् च, अन्यत् = पृथक्फलोपगमः, आहुः = इति विद्वांसः प्रतिपादयन्ति। इति = एवंविधं फलभेदं, धीराणां = धीमतां मुखेभ्यः, शुश्रुमः = वयमाकर्णयामः, ये = ये हि विज्ञाः, नः = अस्मभ्यं, तत् = सम्भूतिविज्ञानं, विचचक्षिरे = विशेषण व्याख्यातवन्तः।

शांकरभाष्य

अन्यदेव पृथगेवाहुः फलं सम्भवात्संभूतेः कार्यब्रह्मोपासनादणिमाद्यैश्वर्यलक्षणं व्याख्यातवन्त इत्यर्थः। तथा चान्यदाहुः असम्भवादसम्भूतेत्याख्याकृताद् अव्याकृतोपासनात्। यदुक्तमन्धन्तमः प्रविशन्तीति प्रकृतिलय इति च पौराणिकैरुच्यत इत्येवं शुश्रुम धीराणां वचनं ये नस्तद् विचचक्षिरे व्याकृताव्याकृतोपासनाफलं व्याख्यातवन्तः इत्यर्थः।

सम्भूति अर्थात् कार्यब्रह्म की उपासना से प्राप्त होने वाला अणिमादि ऐश्वर्यरूप और ही फल बतलाया अर्थात् बखान किया है। तथा असम्भूति यानी अव्याकृत से अर्थात् अव्याकृत प्रकृति की उपासना से और ही फल बतलाया है, जिसे पहले 'अन्धन्तमः प्रविशन्ति' आदि वाक्य से कह चुके हैं तथा पौराणिक लोग जिसे प्रकृतिलय कहते हैं - ऐसा हमने धीरों (बुद्धिमानों) - का कथन सुना है, जिन्होंने हमसे उनका वर्णन किया था अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त उपासनाओं के फल का व्याख्यान किया था।

सारस्वती व्याख्या

सम्भूति और असम्भूति दोनों ही उपासनाएँ फलयुक्त हैं। प्रकृत मन्त्र में 'सम्भव' और 'असम्भव' शब्द क्रमशः 'सम्भूति' और 'असम्भूति' का वाचक हैं। शंकराचार्यादि के अनुसार तत्त्वज्ञों द्वारा सम्भूति अर्थात् कार्यब्रह्म की उपासना से अणिमा आदि ऐश्वर्यरूप फल है, तो असम्भूति अर्थात् अव्यावृत प्रकृति की उपासना से उससे भिन्न प्रकृतिलयात्मक फल है। दयानन्द के अनुसार योगीजन सम्भव अर्थात् संयोग से उत्पन्न कार्य से अन्य फल बतलाते हैं और असम्भव अर्थात् उत्पन्न न होने वाले कारण से भिन्न कार्य और फल बतलाते हैं। अतः सब मनुष्यों को कार्य और कारण वस्तु को जानना चाहिए।

कार्यब्रह्म के चिन्तन से अणिमादि की सिद्धि रूप फल मिलता है और कारणब्रह्म के चिन्तन से प्रकृति में लय प्राप्त होता है यही मंत्र का भाव है।

टिप्पणी

सन्धि

अन्यदेवाहुः = अन्यत् + एव + आहुः (दीर्घसंधि), आहुरसम्भवात् = आहुः + असम्भवात् (विसर्गसंधि)। नस्तद् = नः + तत् (विसर्गसंधि)

समास

असम्भवात् = न सम्भव इत्यसम्भवः, तस्मात् (नञ्तत्पु.)

व्युत्पत्ति

आहुः = ब्रू + उस् (लट्) - प्रथमपुरुष, बहुवचन। सम्भवात् = सम् + भू + अप् + ङसि (पञ्चमी, एकवचन)। नः = अस्मात् + भ्यस्-चतुर्थी बहुवचन। विचचक्षिरे = कि चक्ष् + झ (लिट्-इरेच्) - प्रथमपुरुष, बहुवचन।

प्रसंग - सम्भूति एवं असम्भूति की आवश्यकता एवं उपयोगिता

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।14।।

Translitration

Sambhütïṁ cha wïnāshaṁ cha yastad védöbhayaṃ saha,

wïnāshéna mrityuṁ tértwā sambhütyā amritaṁ ashnuté.

Translation

He who knows the impersonal God and the personal God both as ONE, overcomes death through the personal God and obtains immortality through the impersonal one.

पद्यानुवाद

जो सही रूप में दोनों को अन्तस्तल से लेता जान।
अविनाशी ब्रह्म सनातन को और विनाशशील देवों को मान।।
नश्वर देवों की कर पूजा वह मृत्यु पार कर जाता है।
अविनाशी की कर उपासना अमृत फल वह पाता है।।

पदच्छेद

सम्भूतिम् च विनाशम् च यः तत् वेद उभयम् सह। विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते।

अन्वय

यः सम्भूतिं च विनाशं तत् उभयं सह वेद। (सः) विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते।

शब्दार्थ

सम्भूतिं = उत्पत्ति या समष्टिरूपी ब्रह्म, विनाशं = प्रलय अथवा व्यष्टिरूपी ईश्वर, यः = जो, तद् = उसे, वेद = जानता है। उभयं = दोनों को, सह = साथ। विनाशेन = प्रलय से अथवा व्यष्टिरूप ईश्वरोपासना से, मृत्युं = मरण को, तीर्त्वा = पार करके, सम्भूत्या = समष्टिरूप ब्रह्म की उपासना से, अमृतं = अमृत को, अश्नुते = प्राप्त करता है।

अनुवाद

जो उपासक समष्टिरूप ब्रह्म तथा व्यष्टिरूप ईश्वर अथवा सृष्टि के उद्भव एवं

प्रलय को एक साथ समझता है, वह साधक प्रलयावस्था में अथवा व्यष्टिरूप ईश्वरोपासना के फलस्वरूप सर्वप्रथम मृत्यु को पार कर समष्टिरूप ब्रह्मोपासना के माध्यम से अमृत को प्राप्त कर लेता है।

संस्कृत व्याख्या

यः = योऽपि साधको ब्रह्मचारी वा जनः, संभूतिं = जगदुत्पतिं, विनाशं च = प्रलयं च, प्राण्युत्पतिं मृत्युं चेति वा, तत् = उत्पत्ति-प्रलयात्मकं, उभयं = द्विविधं विज्ञानं, वेद = सम्यक् जानाति, सः = तादृशः साधकः, विनाशेन = मृत्युविज्ञानेन, मृत्युं = मरणावस्थां, तीर्त्वा = अतिक्रम्य, सम्भूत्या = सृष्टिविज्ञानेन, अमृतम् = अमरत्वम्, अश्नुते = प्राप्नोति।

शांकरभाष्य

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह विनाशो धर्मो यस्य कार्यस्य स, तेन धर्मिणा अभेदेन उच्यते विनाश इति। तेन तदुपासनेनानैश्वर्यमधर्मकामादिदोषजातं च मृत्युं तीर्त्वाहिरण्यगर्भोपासनेन ह्यणिमादिप्राप्तिः फलम्, तेनानैश्वर्यादिमृत्युमतीत्य असम्भूत्या अव्याकश्तोपासनया अमृतं प्रकृतिलयलक्षणमश्नुते। सम्भूतिं च विनाशं चेत्यत्रवर्णलोपेन निर्देशो द्रष्टव्यः, प्रकृतिलयफलश्रुत्यनुरोधात्।

जो पुरुष असम्भूति और विनाश - इन दोनों की उपासना के समुच्चय को जानता है वह जिसके कार्य का धर्म विनाश है और इस धर्मी से अभेद होने के कारण जो स्वयं भी विनाश कहा जाता है - उस विनाश से अर्थात् उसकी उपासना से अध र्म तथा कामना आदि दोषों से उत्पन्न हुए अनैश्वर्य रूप मृत्यु को पार करके- हिरण्यगर्भ की उपासना से अणिमादि ऐश्वर्य की प्राप्ति रूप फल ही मिलता है, अतः उससे अनैश्वर्य आदि मृत्यु को पार करके - असम्भूति - अव्यक्तोपासना से प्रकृतिलय रूप अमृत प्राप्त कर लेता है।

'सम्भूतिं च विनाशं च' इस पद समूह में प्रकृतिलय रूप फल बतलाने वाली श्रुति के अनुरोध से अवर्ण के लोपपूर्वक निर्देश हुआ समझना चाहिए।

सारस्वती व्याख्या

इस मंत्र में सम्भूति एवं असम्भूति के एक साथ उपासना का फलोल्लेख है। मंत्र में 'सम्भूति' के साथ 'विनाश' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो पिछले दोनों मंत्रों में अप्रयुक्त है। अर्थ-संगति की अपेक्षा से शंकरादि भाष्यकारों ने 'विनाश' का अर्थ 'सम्भूति' से लिया है। सभी कार्य नाशवान् हैं। कार्य का धर्म विनाश है, अतः कार्य ही 'विनाश' शब्द से वाच्य है। तदनुसार यहाँ 'विनाश' शब्द हिरण्यगर्भरूप कार्यब्रह्म

का वाचक है, जिसे पहले 'सम्भूति' नाम से कहा गया है। वस्तुतः सम्भूति और असम्भूति में असम्भूति ही उत्कृष्ट है, क्योंकि वह कारणरूप है। फिर प्रकृतिलयरूप अमृतत्व की प्राप्ति भी असम्भूति द्वारा ही होती है। अतः 'सम्भूति' शब्द का 'असम्भूति' रूप ग्राह्य है। शंकरमतानुसार जो पुरुष असम्भूति अर्थात् अव्यक्तोपासना और विनाश अर्थात् विनाशधर्मक हिरण्यगर्भ की उपासना एक साथ करता है, वह उपासक विनाशरूप कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भ की उपासना से अधर्म तथा कामना आदि दोषों से उत्पन्न हुए अनैश्वर्यरूप मृत्यु को पार करके अनन्तर असम्भूतिरूप अव्यावृत प्रकृति की उपासना से प्रकृतिलयरूप आपेक्षिक अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

दयानन्द के अनुसार जो विद्वान् कार्यरूप सृष्टि को और सृष्टि के गुण-कर्म-स्वभाव को एवं कारण-रूप प्रकृति को तथा उसके गुण-कर्म-स्वभाव को (अर्थात् कार्यकारणरूप जगत को) एक साथ जानता है, वह नित्यस्वरूप को समझने के कारण शरीर और आत्मा के वियोग से उत्पन्न दुःख को पार करके कार्यरूपा, धर्मकाय में प्रवृत्त करानेवाली सृष्टि के सहयोग से मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है।

'विनाश' को 'असम्भूति' का पर्याय मानते हुए उसे विनाशशील देव-पितर मनुष्यादि का वाचक बताने वाले विद्वानों के मत में यहाँ तात्पर्य है कि जो मनुष्य अविनाशी परमात्मा और विनाशशील देवादि को साथ-साथ यथार्थतः जान लेता है, वह विनाशशील देवादि की उपासना से मृत्युमय संसार-सागर को पार करके अविनाशी परमेश्वर की उपासना से मुक्ति को प्राप्त करता है।

टिप्पणी

सन्धि

यस्तद्वेदोभयं = यः + तत् + वेद + उभयं (विसर्गसंधि, गुणसंधि)। सम्भूत्यामृतम् = सम्भूत्या + अमृतम् (दीर्घसंधि)

व्युत्पत्ति

सम्भूतिं = सम् + भू + क्तिन् + अम् (द्वितीया, एकवचन), विनाशं = वि + नश् + घञ् + अम् (द्वितीया, एकवचन)। विनाशेन = विनाश + टा (तृतीया, एकवचन), तीर्त्वा = तृ + क्त्वा। संभूत्या = सम्भूति + टा (तृतीया, एकवचन)।

प्रसंग - सत्यतत्व का स्वरूप एवं उपासक की मार्गयाचना

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय द्रष्टये ।।15।।

Translitration

Hïraṅmayéna pātréṅa satyasya apïhïtaṁ mukhaṁ,
tattwaṁ püshannapāvriṅu satyadharmāya drishtayé.

Translation

The face of truth is covered by a golden vessel. Oh nourisher, open that so that I, the practitioner of Truth, may behold thee.

पद्यानुवाद

हे अखिल विश्व के पोषक ईश्वर सत्य रूप हे परमेश्वर।
ज्योतिर्मय रविमंडल का ही पात्र ढँका आनन के ईश्वर।।
चाह रहा तेरा दर्शन मैं निरावरण कर दो परमेश्वर।
बाधाओं प्रतिबंधक को तू दूर करो हे अखिलेश्वर ।।

पदच्छेद

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितम् मुखम्। तत् त्वम् पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

अन्वय

सत्यस्य मुखं हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्। पूशन्। सत्यधर्माय दृष्टये त्वं तत् अपावृणु।

शब्दार्थ

सत्यस्य = सत्य का, मुखं = मुँह, हिरण्मयेन = स्वर्णमय, पात्रेण = पात्र से, अपिहितम् = ढका हुआ है। पूषन् = पुष्टिप्रदाता सूर्य, सत्यधर्माय = सत्यरूपी धर्म के लिए, दृष्टये = देखने हेतु, त्वं = आप, तत् = उसे, अपावृणु = उन्मुक्त करें।

अनुवाद

सत्य का मुँह स्वर्णमय पात्र से ढका हुआ है (अर्थात् सदाचार को धन के लोभ ने ढक रखा है।) हे पुष्टिकारक सूर्य देवता! सत्यधर्म के दर्शनार्थ आप उस पात्र से सत्य को उन्मुक्त कर दें, ताकि सत्य की वास्तविकता का ज्ञान हो सके तथा लोभ का निराकरण किया जाना संभव हो सके।

संस्कृत व्याख्या

सत्यस्य = विद्यमानस्य आत्मनः, मुखं = स्वरूपं, हिरण्मयेन = स्वर्णमयेन, पात्रेण = आवरणेन, अपिहितम् = आच्छादितम् अस्ति। पूषन् = हे पुष्टिकारक सवितः!, सत्यधर्माय = अस्तित्वमूलाय आत्मने, दृष्टये = आत्मदर्शनाय वा, त्वं =

भवान् सूर्य देवता, तत् = सत्यस्य मुखं, शरीरस्थजीवात्मस्वरूपं वा, अपावृणु = अपगतावरणं विधेहि।

शांकरभाष्य

हिरण्यमिव हिरण्मयं ज्योतिर्मयमित्येतत्। तेन पात्रेणेव अपिधानभूतेन सत्यस्यैवादित्यमण्डलस्थस्य ब्रह्मणोऽपिहितम् आच्छादितं मुखं द्वारम्। तत्त्वं हे पूषन्नपावृण्वपसारय सत्यस्य उपासनात्सत्यं धर्मो यस्य मम सोऽहं सत्यधर्मो तस्मै मह्यमथवा यथाभूतस्ये धर्मस्यानुष्ठात्रे दृष्टये तव सत्यात्मन उपलब्धये।

जो सोने का सा हो उसे 'हिरण्यमय' कहते हैं, अर्थात् जो ज्योतिर्मय है उस ढकने रूप पात्र से ही आदित्य मण्डल में स्थित सत्य अर्थात् ब्रह्म का मुखद्वार छिपा हुआ है। हे पूशन् ! सत्य की उपासना करने के कारण जिसका सत्य ही धर्म है ऐसा मैं सत्यधर्मा हूँ, उस मेरे प्रति अथवा यथार्थ धर्म का अनुष्ठान करने वाले मेरे प्रति दृष्टि अर्थात् अपने सत्य स्वरूप की उपलब्धि के लिये तू उसे उघाड़ दे - (उस पात्र को) सामने से हटा दे।

सारस्वती व्याख्या

मन्त्र द्वारा आदित्यमण्डल में स्थित सत्यस्वरूप सगुण ब्रह्म से मोक्ष की याचना की गयी है। सर्वव्यापक ब्रह्म के ज्ञान में अशक्त होने के कारण ब्रह्म के प्रतीकरूप आदित्य की उपासना का विधान है। वैदिक ऋषियों द्वारा बाह्य प्रकृति में आदित्य को सगुण ब्रह्म का सर्वोत्तम प्रतीक माना गया है। प्रार्थना में लक्ष्य स्थिर करने के लिए भी सूर्यदेव का अवलम्बन सर्वोपरि है।

इस मंत्र का अन्य आशय यह भी है कि सत्यधर्म का पालन करने के लिए स्वर्णादि भौतिक लोभ छोड़ना ही पड़ेगा। इतिहास भी साक्षी है, धन-लालच में व्यक्ति ही नहीं राष्ट्र भी पतनोन्मुख हो जाते हैं। परमात्मा सत्य रूप है। उस पर सृष्टि मोह का चमकीला आवरण चढ़ा है। परमात्मा दर्शनार्थ मोहादि भौतिक चमकीले आवरण का त्याग निश्चित है। मोह का आवरण ही सत्य के दर्शन में बाधक है। अतः परमात्मा के साक्षात्कार के लिए सभी प्रकार के भौतिक प्रलोभनों से अपने को पृथक् रखना ही होगा।

टिप्पणी

सन्धि

सत्यास्यपिहितं = सत्यस्य + अपिहितम् (दीर्घसंधि), पूषन्नपावृणु = पूषन् + अपावृणु (निर्विकार संधि)।

समास

सत्यधर्माय = सत्यमेव धर्मस्तस्मै (कर्मधारयः)

व्युत्पत्ति

हिरण्मयेन = हिरण्य + मयट् (छान्दस यलोप) + टा (तृतीया, एकवचन), पात्रेण = पा + त्रल् + टा (तृतीया, एकवचन), अपिहितम् = अपि + धा + क्त (नपुं), पूषन् = पुष् + तृच् (छान्दस), अपावृणु = अप + आङ् + वृङ् + सिप् (लोट्) - मध्यमपुरुष, एकवचन। दृष्टये = दृश + क्तिन् + ङे (चतुर्थी, एकवचन)

प्रसंग - आत्मा की यथार्थता एवं शरीर की व्यर्थता का प्रतिपादन

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मिन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।।16।।

Translitration

Püshannékarshé yama sürya prājāpatya
vyüha rashmën samüha
Téjö yatté rüpaṁ kalyāṅatamaṁ tatté pashyāmï
yöösāvasó purushah sööhamasmï

Translation

O Pushan (nourisher); O Ekarshe (seer of one); O Yama (controller); O Surya (sun); O Prajapataya (son of Prajapati); do thou disperse thy rays and concentrate thy brilliance, so that I may see thy auspicious form. Who is that purusha ? He I am !

पद्यानुवाद

भक्तों के पोषक भास्कर तू प्रजापतिप्रिय कहलाते।
तू ही ज्ञान स्वरूप मुख्य हो अखिल नियन्ता कहलाते।।
रवि मंडल की तप्त किरण को लो समेट अपने में प्रभुवर।
लय कर लो या एकत्रित कर उन सबको अपने में नटवर।।
जो परम कल्याण मय रूप मैं देख रहा हूँ अभिनव गिरधर।
है ध्यानमार्ग से कृपा तुम्हारी परम पुरुष हे गंगाधर।।
अब हो ऐसी कृपा तुम्हारी चाह रहा हूँ हे जगदीश्वर।
मैं औ तू तो एकरूप हों हे अविनाशी के प्रलयंकर ।।

पदच्छेद

पूषन् एकर्षे यमसूर्यप्राजात्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजः यत् ते रूपम् कल्याणतमम्, तत् ते पश्यामि यः असौ असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि।।

अन्वय

पूषन् ! एकर्षे ! यम ! सूर्य ! प्राजापत्य ! रश्मीन् व्यूह। समूह (च)। ते यत् कल्याणतमं तेजः रूपं तत् ते (रूपं) पश्यामि। असौ असौ यः पुरुषः सः अहम् अस्मि्।

शब्दार्थ

पूषन् = पुष्टिकारक, एकर्शे = एकद्रष्टा, यम = नियामक, सूर्य = तेजः प्रदाता, प्राजापत्य = प्रजापालक, रश्मीन् = किरणों को, व्यूह = समेट लो। समूह = पुञ्जीभूत कर लो। यत् = जो, ते = तुम्हारा, कल्याणतमं = प्रचुर कल्याणकारी, तेजः रूपं = तेजस्वी स्वरूप है, तत = उसे, पश्यामि = देखता हूँ। असौ = प्राणतत्व में, असौ = ऐसा यह, पुरुषः = आत्मा, सः = वह, अहम् = मैं, अस्मि = हूँ।

अनुवाद

हे पोषक, एकमात्र द्रष्टा, जगन्नियन्ता, तेजः प्रदाता, प्रजापालक सूर्य देव ! आप अपनी लोकोपकारकें किरणों की समेटे, उन्हें पुञ्जीभूत करें। आपके जिस अत्यन्त कल्याणकारी रूप को तेजोमयरूप में मैं देख रहा हूँ, वह प्राणस्थ आत्मा में ही है (वह उक्त गुणविशिष्ट आत्मा मुझसे पृथक् नहीं है।)

संस्कृत व्याख्या

पूषन् = हे पुष्टिकारिन्, एकर्षे = एकदृष्टः, यम = नियन्तुः, सूर्यः = तेजः प्रदातः, प्राजापत्य = प्रजापालक, रश्मीन् = स्वज्योतिर्मयान् किरणान्, व्यूह = व्युच्छिन्नान् कुरू। समूह = समाच्छन्नान कुरू, च = अपि। ते = तव परब्रह्मणः, यत् = पूर्वोक्तं, कल्याणतमं = अतिशयेन मंगलास्पदं, तेजः रूपं = ज्योतिः स्वरूपं, तत् = तदेव, ते = तस्मैतदर्थं वा, पश्यामि = अवलोकयामि, असौ = प्राणे, असौ = एतादृशः, यः = अयं, पुरुषः = आत्मा, सः = आत्मरूप एव, अहं = परं ब्रह्म, अस्मि = वर्ते।

शांकरभाष्य

हे पूषन् ! जगतः पोषणात्पूषा रविस्तथैक एव ऋषति गच्छति इत्येकर्षिः। हे एकर्षे तथा सर्वस्य संयमनाद्यमः - हे यम ! तथा रश्मीणां तृणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः - हे सूर्य ! प्रजापतेरपत्यं प्राजापत्यः - हे प्राजापत्य ! व्यूह विगमय रश्मीन् स्वान्। समूह एकीकुरू उपसंहर त्तेते तेजस्तापकं ज्योतिः। यत्ते तव रूपं कल्याणतमम् अत्यन्तशोभनं तत्ते तवात्मनः प्रसादात् पश्यामि। किञ्चाहं न तु त्वां भृत्यवद्याचे।

योऽसावदित्यमण्डलस्थो व्याहृत्यवयवः पुरुषः पुरुषाकारत्वपुरुषः सोऽहमस्मि भवामि।

हे पूषन् ! जगत् का पोषण करने के कारण सूर्य पूषा है। वह अकेला ही चलता है इसलिये एकर्षि है - हे एकर्षे! सबका नियमन करने के कारण यम है - हे यम! किरण, प्राण और रसों को स्वीकार करने के कारण सूर्य है - हे सूर्य! प्रजापति का पुत्र होने से प्राजापत्य है - हे प्राजापत्य! अपनी किरणों को दूर कर। अपने तेज यानी सन्तप्त करने वाली ज्योति को पुञ्जीभूत एकत्रित अर्थात् शान्त कर।

तेरा जो अत्यन्त कल्याणमय अर्थात् परम सुन्दर स्वरूप है, उसे तुझ आत्मा की कृपा से मैं देखता हूँ तथा यह बात मैं तुझसे सेवक के समान याचना नहीं करता; क्योंकि यह जो व्याहृतिरूप अंगों वाला आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है - जो पुरुषाकार होने से अथवा जो प्राण और बुद्धि रूप से समस्त जगत् को पूर्ण किये हुए है या जो शरीर रूप पुर में शयन करने के कारण पुरुष है - वह मैं ही हूँ।

सारस्वती व्याख्या

उपासक पूषा को विविध नामों से सम्बोधित करता है। पूषा नाम जगत के पोषणार्थ है। आकाश में अकेले चलने से 'एकर्षि' है। समस्त जगत् का नियमन, नियन्त्रण और शासन करने के कारण सूर्य 'यम' है। प्रजापति हिरण्यगर्भ से उत्पन्न होने के कारण सूर्य 'प्राजापत्य' है। सूर्यरूप ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् का पोषक, एकमात्र द्रष्टा, जगत् का नियन्ता, सर्वप्रेरक और प्रजापति होने से ही प्रजापत्य है। उपासक रश्मि और तेज के कारण ही अतिशय कल्याणमय, परमरमणीय और आनन्दात्मक स्वरूप को देखने में असमर्थ है। अतः वह प्रार्थना करता है कि प्रभु कृपा करके उसे अपना सत्य और कल्याणतम रूप दिखा दें। पुनः उपासक आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म को अपने ही रूप में देखता है। उसे ज्ञान हो जाता है कि आध्यात्मिक तत्त्व सूर्य में है, वही मुझमें है।

मूलतः उपासक आदित्यमण्डलस्य ब्रह्म के दर्शनार्थ सूर्य से अपने प्रकाश को केन्द्रित करने की प्रार्थना करता है। पुनः प्रभु कृपा से वह उसके कल्याणतम रूप ब्रह्मदर्शन का साक्षात्कार कर लेता है। ब्रह्म ज्ञान ही ब्रह्म दर्शन है। उसे सूर्य में अपनी ही 'सोऽहम्' अनुभूति होती है। ज्ञान के प्रकाश से उपासक 'अहं ब्रह्मास्मि (ब. आ. उ. 1/4/10) की प्रतीति होने लगती है। यह मंत्र जीवात्मा और परमात्मा के तादात्म्य का अभिव्यंजक है।

टिप्पणी

सन्धि

एकर्षे = एक + ऋषे (गुणसंधि), योऽसावसौ = यः + असौ + असौ (पूर्वरूप, अयादि)। सोऽहम् = सः + अहम् (पूर्वरूप)

समास

एकर्षे = एकश्चासौ ऋषिश्चेति (कर्मधारयः)।

व्युत्पत्ति

प्राजापत्य = प्रजापति + अण्। प्र + जन् + ड + टाप् = प्रजा, पा + डति = पति। व्यूह = वि + वह् + सिप् (लोट्) - मध्यमपुरुष, एकवचन ('व' का सम्प्रसारण-छान्दस)। समूह = सम् + वह् + सिप् (लोट्) - मध्यमपुरुष, एकवचन ('व' का सम्प्रसारण-छान्दस)। कल्याणतमम् = कल्याण + तमप् + अम् - द्वितीया, एकवचन। पश्यामि = दृश + मिप् (लट्) - उत्तमपुरुष, एकवचन।

प्रसंग - मरणोन्मुख उपासक की प्रार्थना

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरं।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ।। 17।।

Translitration

Vāyuranïlam amritam athédam bhasmāntam sharëram,
öm kratö smara kritaṃ smara kratö smara kritaṃ smara.

Translation

Let my prana into universal prana; let this body to ashes; *Om,* O universal Atma, remember, do thou remember actions; O, universal Soul, remember actions !

पद्यानुवाद

ये प्राणेन्द्रियाँ जो भी हैं वे जाकर शीघ्र प्रवेश करें।
समष्टि वायु तत्त्व अविनाशी उसमें वे भी सतत झरें।।
यह स्थूल देह भी जलकर खाक जमी पर हो जाये।
अपने उचित तत्त्व में मिलकर अपने को यह खो जाये।।
अन्तिम विनय नाथ है तुझसे भक्तों को तू याद करो।
हे! हे! यज्ञयुक्त परमेश्वर ममकर्मों को याद करो ।।

पदच्छेद

वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम्। ओम् क्रतो। स्मर कृतम् स्मर क्रतो। स्मर कृतम स्मर।।

अन्वय

वायुः अनिलम् अमृतम्। अथ इदं शरीरं भस्तान्तम्। क्रतो! ओम् स्मर, कृतं स्मर! क्रतो! स्मर, कृतं स्मर।

शब्दार्थ

वायुः = प्राणादि पञ्चवायु, अनिलं = अपार्थिव, अमृतं = अमृत है। अथ = और, इदं = यह, शरीरं = शरीर, भस्मातं = अन्त में भस्म होने वाला। क्रतो = कर्मकर्त्ता पुरुष, कृतं = क्रियमाण कर्म को, स्तर = याद कर।

अनुवाद

प्राण, अपान, उदान, समान एवं व्यान ये शरीरस्थ पञ्च प्राण, अनिलं = पृथ्वी तत्त्व से असम्बद्ध, अमृतं = लोकोत्तर जीवनदायी तत्त्व हैं, तथा यह मानव शरीर अन्ततः भस्म होने वाला है, अतः हे कर्मो के अनुष्ठाता प्राणी ! तू किये हुए कर्मो का स्मरण कर, हे कर्म करने वाले, तू याद कर अपने कर्मो को याद कर।

संस्कृत व्याख्या

वायुः = प्राणादिसंज्ञाविशिष्टो मातरिश्वा, अनिलम् = अपार्थिवम्, अमृतं = अमरत्वप्रदायकं तत्त्वमस्ति। अथ = अपि, इदं = एतत्, शरीरं = देहः, भस्मातं = अन्ते मरणावस्थायां भस्मनोपयुक्तम् भस्मीभूतं भवतीत्याशयः। क्रतो = भोः कर्मानुष्ठातः, ओम् =ऊंकारस्वरूपं परं ब्रह्म, स्मर = स्मृत्या चिन्तय, कृतं = क्रियमाणं कर्म, स्मर = चिन्तय। क्रतो = कर्मशील ! स्मर = स्मृतिमुपैहि, कृतं = कार्यजातं, स्मर = चिन्तय।

शांकरभाष्य

अथेदानीं मम मरिष्यतो वायुः प्राणोऽध्यात्मपरिच्छेदं हित्वाऽधिदैवतमात्मानं सर्वात्मकमनिलमम तं सूत्रत्मानं प्रतिपद्यतामिति वाक्यशेशः लिंग चेदं ज्ञानकर्मसंस्कृतमुत्क्रामत्विति द्रष्टव्यम्। मार्गयाचनसामर्थ्यात्। अथेदं शरीरमग्नौ हुतं भस्मान्तं भूयात्। ओमिति यथोपासनम् ऊँ प्रतीकात्मकत्वात्सत्यात्मकमग्न्याख्यं ब्रह्माभेदेनोच्यते। हे क्रतो! संकल्पात्मक! स्मर यन्मम स्मर्तव्यं तस्य कालोऽयं प्रत्युपस्थितोऽतः स्मर। एतावन्तं कालं भावितं कृतमग्रे स्मर, यन्मया बाल्यप्रभृत्यनुश्ठितं

कर्म तच्च स्मर। क्रतो स्मर, कृतं स्मरेति पुनर्वचनमादरार्थम्।

अब मुझ मरने वाले का वायु - प्राण अपने अध्यात्म परिच्छेद को त्यागकर अधिदैवरूप सर्वात्मक वायुरूप अमृत यानी सूत्रात्मा को प्राप्त हो - इस प्रकार इस वाक्य में 'प्रतिपद्यताम्' यह क्रियापद जोड़ लेना चाहिए। यहाँ यह समझना चाहिए कि ज्ञान और कर्म के संस्कारों से युक्त यह लिंग-देह उत्क्रमण करे; क्योंकि इस (श्रुति से) मार्ग की याचना की गयी है तथा अब यह शरीर अग्नि में होम कर दिये जाने पर भस्मशेष हो जाय।

'ॐ' ऐसा कहकर यहाँ उपासना के अनुसार सत्यस्वरूप अग्निसंज्ञक ब्रह्म ही अभेद रूप से कहा गया है; क्योंकि 'ॐ' उसका प्रतीक है। हे क्रतो! संकल्पात्मक मन ! तू इस समय जो मेरा स्मरणीय है उसका स्मरण कर, अब यह उसका समय उपस्थित हो गया है, अतः तू स्मरण कर। बाल्यावस्था से लेकर इतने काल तक मैंने जिस कर्म का पहले अनुष्ठान किया है, उसका भी स्मरण कर। 'क्रतो स्मर कृतं स्मर' वहाँ ('स्मर' पद की) पुनरुक्ति आदर के लिये है।

सारस्वती व्याख्या

मंत्राशय है कि व्यक्ति को अपने कार्यों का आत्मालोचन करना चाहिए। इससे की गई गलतियों का सर्वेक्षण हो जाता है एवं सुधारोपरान्त उद्धार हेतु प्रयत्नशील हो जाते हैं। प्राण सर्वव्यापी प्राण में मिल जाता है। यह आत्मा अविनाशी है और शरीर भस्मरूप है। अतः इस शरीर के कृत कार्यों के पुनर्परीक्षण से या आत्मालोचन से सद्गति प्राप्त होती है।

टिप्पणी

सन्धि

वायुरनिलम् = वायुः + अनिलम् (विसर्गसंधि), अथेदं = अथ + इदम् (गुणसंधि)।

समास

भस्मान्तम् = भस्म अन्ते यस्य तत् (बहुव्रीहि)

व्युत्पत्ति

अमृतम् = अ + मृ + क्त। कृतम् = कृ + क्त।

प्रसंग - आत्माभ्युदय, कर्मफल विनाश एवं पाप शुद्धि हेतु ईश्वर-प्रार्थना

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।18।।

Translitration

Agné naya supathā rāyé asmān
wishwānï déva vayunānï wïdwān,
Yuyödhyasmat juhurāṅaménö
bhüyïshthāṁ té nama uktïṁ wïdhéma.

Translation

O, Agni, lead us to spiritual incarnation; O God ! Thou in know of my action, remove from us complicated sins. We supplicate Thee our best invocations.

पद्यानुवाद

मम कर्मों के ज्ञाता ईश्वर अग्निदेव हे विश्वेश्वर।
चाह रहा मैं प्रभु ढिग जाना सुन्दर पथ दो परमेश्वर।।
इस मार्ग के प्रतिबंधक जो पापादि खड़े हों प्रभुवर।
बारंबार मैं कर प्रणाम कहता हूँ दूर करो नटवर ।।

पदच्छेद

अग्ने! नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनः, भूयिष्ठाम् ते नमः उक्तिम् विधेम।।

अन्वय

अग्ने! अस्मान् सुपथा राये नय। देव! विश्वानि वयुनानि विद्वान्। अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि। ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम

शब्दार्थ

अग्ने = हे अग्निदेवता, अस्मान् = हमें, सुपथा = सुन्दर मार्ग से, राये = उन्नति के लिए, नय = ले चल। देव = हे ईश्वर, विश्वानि = सम्पूर्ण, वयुनानि = कर्मों को, विद्वान = जानते हैं। अस्मत् = हमारे से, जुहुराणं = कुटिल, एनः = पाप को, युयोधि = पृथक कर, ते = तुम्हारी, भूयिष्ठां = अत्यधिक, नम उक्तिं = प्रार्थना, विधेम = करते हैं।

अनुवाद

हे अग्निदेवता! आप हम साधक उपासकों को उचित रमणीय मार्ग से अपने आत्मिक अभ्युदय हेतु ले चलें। हे ईश्वर, आप हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हैं। हमसे

कुटिल पापों को दूर कर दें। हम आप से बार-बार प्रार्थना करते है।

संस्कृत व्याख्या

अग्ने = वह्ने, अस्मान् = साधकान् ब्रह्मोपासकान् वा, सुपथा = शोभनमार्गेण, राये = आत्मोन्नतिलाभाय, नय = प्रापय। देव = ईश, विश्वानि = सर्वाणि, वयुनानि = कर्माणि मार्गाणि वा, विद्वान् = भवान् ज्ञातवान्। अतः, अस्मत् = मत्तः, जुहुराणं = जिह्म, एनः = पापं, युयोधि = वियुज्यस्व। ते = तव अग्नेः, भूयिष्ठां = प्रचुराणि, नम उक्तिं = प्रार्थनावचांसि, विधेम = कुर्याम।

शांकरभाष्य

हे अग्ने! नय गमय सुपथा शोभनेन मार्गेण। सुपथेति विशेषणं दक्षिणमार्गनिवृत्त्यर्थम्। निर्विण्णोऽहं दक्षिणेन मार्गेण गतागतलक्षणेनातो याचे त्वां पुनः पुनर्गमनागमनवर्जितेन शोभनेन पथा नय। राये धनाय कर्मफलभोगायेत्यर्थः। अस्मान्यथोक्तधर्मफलविशिष्टान्। विश्वानि सर्वाणि हे देव ! वयुनानि कर्माणि प्रज्ञानानि वा विद्वाञ्जानन्।

किञ्च, युयोधि वियोजय विनाशय अस्मदस्मत्तो जुहुराणं कुटिलवञ्चनात्मकमेनः पापम्। ततो वयं विशुद्धाः सन्त इष्टं प्राप्स्याम इत्यभिप्रायः। किन्तु वयमिदानीं ते न शक्नुमः परिचर्यां कर्त्तुम्। भूयिष्ठां बहुतरां ते तुभ्यं नम उक्तिं नमस्कारवचनं विधेम, नमस्कारेण परिचरेम इत्यर्थः। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा 'विद्ययामृतमश्नुते' (ई. उ. 11) 'विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते (ई. उ. 14) इति श्रुत्वा केचित्संशयं कुर्वन्ति। अतस्तन्निकारणार्थं संक्षेपतो विचारणां करिष्यामः।

तत्र तावत्किन्निमितः संशय इत्युच्यते - विद्याशब्देन मुख्या परमात्मविद्यैव कस्मान्न ग ह्यतेऽमश्तत्वञ्च। ननूक्तायाः परमात्मविद्यायाः कर्मणश्च विरोधात्समुच्चयानुपपत्तिः। सत्यम्, विरोधस्तु नावगम्यते। विरोधाविरोधयोः शास्त्रप्रमाणकत्वात्। यथाविधानुष्ठानं विद्योपासनञ्च शास्त्रप्रमाणकं तथा तद्विरोधाविरोधावपि। यथा चन हिंस्यात्सर्वभूतानीति शास्त्रदवगतं पुनः शास्त्रेणैव बाध्यतेऽध्वरे पशुं हिंस्यादिति। एवं विद्याविद्ययोरपि स्यात्। विद्याकर्मणोश्च समुच्चयः।

न 'दूरमेते विपरीते विशूची अविद्या या च विद्या' (क. उ. 1/2/4) इति श्रुतेः। विद्यां चाविद्यां चेति वचनादविरोध इति चेत्?;

न, हे-तुस्वरूपफलविरोधात्। विद्याविद्याविरोधाविरोधयोर्विकल्पनासम्भवात्समुच्चयविद्यानादविरोध एवेति चेत्? न, सहसम्भवानुपपत्तेः। क्रमेणैकाश्रये स्यातां विद्याविद्ये इति चेत्? न; विद्योत्पतौ अविद्याया ह्यस्तत्वात्तदाश्रयेऽविद्यानुपपत्तेः। न ह्यग्निरुष्णः प्रकाशश्चेति विज्ञानोत्पतौ यस्मिन्नाश्रये तदुत्पन्नं तस्मिन्नेवाश्रये शीतोऽग्निरप्रकाशो वेत्यविद्याया

उत्पत्तिर्नापि संशयोऽज्ञानं वा "यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।" (ई.उ. 7) इति शोकमोहाद्यसंभवश्रुतेः। अविद्यासम्भवात्तदुपादानस्य कर्मणोऽप्यनुपपत्तिम् अवोचाम।

अमृतमश्नुत इत्यापेक्षिकम् अमृतम्। विद्याशब्देन परमात्मविद्याग्रहणे हिरण्मयेनेत्यादिना द्वारमार्गादियाचनमनुपपन्नं स्यात्। तस्मादुपपादनाय समुच्चयो न परमात्मविज्ञानेनेति यथास्माभिर्व्याख्यात एव मन्त्रणामर्थ इत्युपरम्यते।

हे अग्ने ! मुझे सुपथ अर्थात् सुन्दर मार्ग से ले चल। यहाँ 'सुपथा' यह विशेषण दक्षिण मार्ग की निवृत्ति के लिये है। मैं आवागमन रूप दक्षिण मार्ग से ऊब गया हूँ, अतः तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि यथोक्त कर्मफल विशिष्ट हम लोगों को हमारे सम्पूर्ण कर्म अथवा ज्ञानों को जानने वाले हे देव ! तू 'राये' - धन के लिये अर्थात् कर्मफल भोग के निमित्त पुनः-पुनः आने-जाने से रहित शुभ मार्ग से ले चल।

तथा तू हमसे कुटिल अर्थात् वञ्चनात्मक पापों को 'युयोधि' - वियुक्त कर दे यानी उनका नाश कर दे। तब हम विशुद्ध होकर अपना इष्ट प्राप्त कर लेंगे - यह इसका अभिप्राय है। किन्तु इस समय हम तेरी परिचर्या (सेवा) करने में समर्थ नहीं है। अतः हम तेरे लिये बहुत-सी 'नमः' उक्ति यानी नमस्कार-वचन विधान करते हैं अर्थात् नमस्कार से ही तेरी परिचर्या करते हैं।

'अविद्या (कर्म)-से मृत्यु को पारकर विद्या (देवता ज्ञान) - से अमृत प्राप्त करता है।' विनाश (कार्य ब्रह्म की उपासना) - से मृत्यु को पारकर असम्भूति (अव्यक्त की उपासना) - से अमृत लाभ करता है' - ऐसा सुनकर कुछ लोगों को संशय हो जाता है। अतः उसकी निवृत्ति के लिये हम संक्षेप से विचार करते हैं - अच्छा तो यहाँ किस निमित्त को लेकर संशय होता है? इस पर कहते हैं -

पूर्व. - यहाँ 'विद्या' शब्द से मुख्य परमार्थ विद्या तथा 'अमृत' शब्द से अमृतत्व ही क्यों नहीं लिया जाता?

सिद्धान्ती - ऊपर बतलायी हुई परमार्थ विद्या और कर्म का परस्पर विरोध होने के कारण उनका समुच्चय नहीं हो सकता।

पूर्व. - ठीक है, परन्तु इनका विरोध या अविरोध तो शास्त्र प्रमाण से ही सिद्ध हो सकता है; अतः (यहाँ शास्त्रविधि होने के कारण) इनका विरोध नहीं जान पड़ता। जिस प्रकार अविद्या का अनुष्ठान और विद्या की उपासना शास्त्र प्रमाण से सिद्ध है, उसी प्रकार उनके विरोध और अविरोध भी हैं। जैसे 'सभी प्राणियों की हिंसा न करे' यह बात शास्त्र से जानी जाती है और फिर 'यज्ञ में पशु की हिंसा करे' इस शास्त्रविधि

से ही बाधित भी हो जाती है, वैसे ही विद्या और अविद्या के सम्बन्ध में भी हो सकता है और इस प्रकार विद्या तथा कर्म का समुच्चय हो जायगा।

सिद्धान्ती - नहीं, क्योंकि श्रुति कहती है - 'जिनकी गति भिन्न-भिन्न हैं, वे विद्या और कर्म सर्वथा विपरीत हैं।'

पूर्व. - किन्तु 'विद्यां चाविद्यां च' इस वाक्य के अनुसार इन दोनों का अविरोध है न?

सिद्धान्ती - नहीं, क्योंकि उनके हेतु, स्वरूप और फलों में विरोध है।

पूर्व. - विद्या और अविद्या तथा विरोध और अविरोध इनमें विकल्प तो हो नहीं सकता तथा इनके समुच्चय का विधान किया गया है, इसलिये इनका अविरोध ही है - ऐसा मानें तो?

सिद्धान्ती - नहीं, क्योंकि इन दोनों का साथ रहना सम्भव नहीं है।

पूर्व. - यदि ऐसा मानें कि विद्या और अविद्या क्रम से एक आश्रय में रहनेवाली हैं, तो?

सिद्धान्ती - नहीं, क्योंकि विद्या के उत्पन्न हो जाने पर अविद्या का नाश हो जाता है और फिर उसी आश्रय में अविद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती।' अग्नि उष्ण और प्रकाश स्वरूप है' इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर जिस (अग्निरूप) आश्रय में यह उत्पन्न हुआ है उसी में अग्नि शीतल और अप्रकाशमय है - ऐसा अज्ञान नहीं हो सकता; अधिक क्या इस विषय में उस पुरुष को कोई संदेह अथा भ्रम भी नहीं हो सकता। ज्ञानी के लिये शोक-मोहादि को असम्भव बतलाने वाली 'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इस श्रुति से भी यही सिद्ध होता है। इस प्रकार अविद्या के असम्भव हो जाने पर उसके आश्रय से होने वाले कर्म भी नहीं हो सकते - यह बात हम पहले ही कह चुके हैं।

यहाँ जो कहा गया है कि अमृत को प्राप्त होता है सो आपेक्षिक अमृत समझना चाहिए। यदि 'विद्या' शब्द से परमात्मविद्या ली जाय तो 'हिरण्मयेन' इत्यादि मंत्रों से मार्गादि की याचना नहीं बन सकती। इसलिए यहाँ उपासना के साथ ही (कर्म का) समुच्चय किया गया है, परमात्मज्ञान के साथ नहीं। इस प्रकार इन मंत्रों का वही अर्थ है, जैसा कि हमने व्याख्यान किया है।

सारस्वती व्याख्या

इस मंत्र में सन्मार्ग की प्राप्ति हेतु यज्ञाग्नि से प्रार्थना की गयी है। जीवन्मुक्ति

तो एक मात्र आत्मज्ञान से ही लक्ष्य है। इस मंत्र के कर्मनिष्ठ उपासक ने संसार की असारता को जान लिया है। अतः अग्निदेव से प्रार्थना है कि उन्हें कुटिल पाप से दूर करें। इस प्रकार अग्नि से मरणोन्मुख साधक कर्मज्ञान फल के उपभोग के लिए सुमार्ग की याचना करता है।

टिप्पणी

सन्धि

युयोध्यस्मज्जुहुराणम् = युयोधि + अस्मत् + जुहुराणम् (यण्संधि, हल्संधि)। नम उक्तिं = नमः + उक्तिम् (विसर्गलोप)

समास

सुपथा = शोभनः पन्थाः तेन (कर्मधारयः)

व्युत्पत्ति

राये = रै + ङे (छान्दस) - चतुर्थी, एकवचन। विद्वान् = विद् + क्वासु, अस्मान् = अस्मद् + शस्-द्वितीया, बहुवचन। विश्वानि = विश्व + शस् - द्वितीया, बहुवचन, वयुनानि = वयुना + शस् - द्वितीया, बहुवचन। युयोधि = युध् + सिप् (लोट्) - मध्यमपुरुष एकवचन। भूयिष्ठां = भूय + इष्ठन् + टाप् - द्वितीया, एकवचन। उक्तिम् = वच् + क्तिन् + अम्-द्वितीया, एकवचन। अस्मत् = अस्मद् + ङसि-पञ्चमी, एकवचन।

शान्ति पाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्य
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिश्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

Translitration

Ōm pürnamadah pürṅamïdaṁ pürṅāt pürṅamudachyaté,
pürṅasya pürṅamādaya pürṅaméwa awashïshyaté.
Ōm Shāntïh Shāntïh Shantïh

Translation

That is full, this is full. From full, the full is taken, the full has come. If you take out full from the full, the full alone remains.

Om, Shanti Shanti Shanti

पद्यानुवाद

ओम पूर्ण परब्रह्म सनातन जगत् पूर्ण कहलाता है।
उत्पन्न होकर पूर्ण ब्रह्म से आँखों से दिखलाता है।।
दे निकाल जब पूर्ण पूर्ण से पूर्ण शेष रह जाता है।
यही शेष अवशेष निरंतर शुद्ध ब्रह्म कहलाता है।।

प्रमुख उपनिषदों के शान्ति मंत्र

प्रमुख उपनिषदों के शान्ति मंत्र

(ऋग्वेद से संबद्ध ऐतरेयादि उपनिषद्)

1. ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्।
आविराविर्म एधि।
वेदस्य म आणीस्थः। श्रुतं मे माप्रहासीः।
अनेनाधीतेनाहो रात्रान्सन्दधामि।
ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु।
तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।
शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Translitration

om vang me manasi pratishthita
mano me vachi pratishthitam
aviravirma edhi
vedasya ma anisthah shrutam me maprahasih
anena adhitena aho ratran sandadhami
rtam vadishyami | satyam vadishyami |
tan mam avatu | tad vaktaram avatu | avatu mam | avatu vaktaram | om shantih shantih shantih

Translation

May my speech be fixed in the mind;
May my mind be fixed in the Speech;
O Self-manifesting One, reveal yourself to me.
O you two (mind and body), be the channel for the vedic

wisdom; May I not forget what I have heard;
may I study day and night without forgetting.
May I speak only the Right. May I speak only the Truth;
May That protect me;
May That protect my teacher.
Om ! Peace ! Peace ! Peace !

अन्वय

ऊँ मे वाक् मनसि प्रतिष्ठिता
मे मनः वाचि प्रतिष्ठितम्
आविः मे आविः एधि।
मे वेदस्य आणीस्थः।
मे श्रुतम् प्रहासीः।
अनेन अधीतेन अहोरात्रन् संदधामि
ऋतम् वदिष्यामि। सत्यम् वदिष्यामि
तत् माम् अवतु। तत् वक्तारम् अवतु। व
ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थ

ऊँ-हे, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मान्: मे-मेरी, वाक्-वाक् इन्द्रिय, मनसि-मनमें, प्रतिष्ठता-स्थित हो जाय, मे-मेरा, मनः-मन, वाचि- वाक् इन्द्रिय, प्रतिठितम स्थित हो जाय, आविः हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, मे मेरे लिए आवीः एधि (तू) प्रकट हो, से (हे मन और वाणी! तुम दोनों) मेरे लिए, वेदस्य वेदविषयक ज्ञानको, आणीस्थ लाने वाले बनो, मे मेरा, श्रुतम् सुना हुआ ज्ञान का प्रहासी (मुझे) ने छोड़े अनेन अधीतेन इस अध्यायनके द्वारा, अहोरात्रान् (मै) दिन ओर रात्रि को, संदधामि एक कर दू, श्रृतम् (मैं) श्रेष्ठ शब्दों को ही वदिष्ययामि बोलूंगा, सत्यम् सत्य ही वदिष्यामि-एक कर दूँ, तत्-वह (ब्रह्म), माम् अवतु-मेरी रक्षा करे, तक्तारम् अवतु-आचार्य की रक्षा कर, अवतु माम्-रक्षा करे मेरी (और), अवतु वक्तारम्-रक्षा करे (मेरे) आचार्य की, ओम् शान्तिः-भगवान् शान्तिस्वरूप है, शान्तिः-शान्ति स्वरूप है, शान्तिः-शान्तिस्वरूप है।

अर्थ

हे परमात्मन! मेरी वाणी मन में स्थित हो, मन वाणी में प्रतिष्ठित हो। (हे

परमात्मन्) आप मेरे समक्ष प्रकट हों। मेरे लिए वेद ज्ञान लाएँ (प्रकट करें)। मैं पूर्वश्रुत ज्ञान को विस्मृत न करूँ। इस स्वाध्यायशील प्रवृत्ति से मैं दिन और रात्रियों को एक कर दूँ (मेरा स्वाध्याय सतत चलता रहे)। मैं सदैव ऋत और सत्य बोलूँगा। ब्रह्म मेरी रक्षा करे। वह (ब्रह्म) वक्ता (आचार्य) की रक्षा करे। त्रिविध (आधिभौतिक) आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ताप शान्त हों।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध सभी उपनिषद् यथा ईशोपनिषद, बृहदाण्यकोपनिषद आदि (Shanti Mantras for all Upanishads associated with Shukla Yajur Veda such as ISHO, Brahadaranyaka etc.)

2. ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Translitration

purnam adah purnam idam purnat purnam udachyate |
purnasya purnam adaya purnam eva avashishyate
om shantih shantih shantih

Translation

That is full, this is full. From full, the full is taken, the full has come. If you take out full from the full, the full alone remains.

Om, Shanti Shanti Shanti

पद्यानुवाद

ओम पूर्ण परब्रह्म सनातन जगत् पूर्ण कहलाता है।
उत्पन्न होकर पूर्ण ब्रह्म से आँखों से दिखलाता है।।
दे निकाल जब पूर्ण पूर्ण से पूर्ण शेष रह जाता है।
यही शेष अवशेष निरंतर शुद्ध ब्रह्म कहलाता है।।

अन्वय

ऊँ अदः पूर्णम्। इदम्
पूर्णम्। पूर्णात् पूर्णम्
उदच्यते पूर्णस्य पूर्णम् आदाय।
पूर्णम् एव अवशिष्यते
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थ

ऊँ-सच्चिदानंद, अद-वह परब्रह्म, पूर्णम्-सब प्रकार से पूर्ण है, इदम्-यह (जगत् भी), पूर्णम्-पूर्ण (ही) है, (क्योंकि), पूर्णात्-उस पूर्ण (परब्रह्म) से ही, पूर्णम्- यह पूर्ण, उदच्यते-उत्पन्न हुआ है, पूर्णस्य-पूर्ण के, पूर्णम्-पूर्ण को, आदाय-निकाल लेने पर (भी), पूर्णम्-पूर्ण, एव-ही, अवशिष्यते-बच रहता है।

अर्थ

वह (ब्रह्म) पूर्ण है। उसका यह जगत भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म से ही यह पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। पूर्ण ब्रह्म की पूर्णता को लेकर उससे निकल जाने पर भी वह ब्रह्म पूर्ण ही शेष रहता है। त्रिविध (आधि भौतिक) आधि दैविक एवं आध्यात्मिक ताप शान्त हों।

कृष्ण-यजुर्वेद से सम्बद्ध कठ, तैत्तिरिय आदि उपनिशदों से शान्ति मंत्र (Shanti Mantras for all Upandishad associated with Krishna Yajur Veda as Katha U, Taittidriya Up, etc.)

३. ऊँ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तुमा विद्विषावहै।।
शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Translitration

om saha nau avatu | saha nau bhunaktu
saha viryam karavavahai
tejasvinau avadhitam astu ma vidvishavahai
om shantih shantih shantih

Translation

Om ! May He protect us both [student and teacher];
May He take pleasure in us both.
May we be courageous together;
May spiritual knowledge shine in our front.
May we not hate anyone.
Om ! Peace ! Peace ! Peace !

पद्यानुवाद

ऊँ नौ सह अवतु। नौ सह भुनक्तु।

सह वीर्यम् करवावहै। नौ अधीतम्
तेजस्वि अस्तु। मा विद्विषावहै।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थ

ऊँ-पूर्णब्रह्म परमात्मन्, (आप), नौ-हम दोनों (गुरु-शिष्य) की, सह-साथ-साथ, अवतु-रक्षा करें, नौ-हम दोनों का सह-साथ-साथ, भुनक्तु-पालन करें, सह-(हम दोनों) साथ-साथ ही, वीर्यम्-शक्ति, करवाता है प्राप्त करें, नौ-हम दोनों की, अधीतम्-पढ़ी हुई विद्या, तेजस्वी-तेजोमयी, अस्तु-हो, मा विद्विषावहै- हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

अर्थ

वह परमात्मा हम दोनों (गुरु और शिष्य) की साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का भोजनादि के द्वारा साथ-साथ पालन करें। हम दोनों साथ-साथ विद्या संबंधी बल अथवा पराक्रम प्राप्त करते रहें। हम दोनों का पढ़ा हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। हमारे तीनों प्रकार के तापों की शान्ति हो। त्रिविध (आधि भौतिक) आधि दैविक एवं आध्यात्मिक ताप शान्त हों।

4. ऊँ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शंनो विष्णुरुरुक्रमः।। नमो ब्रह्मणे।
नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।
ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तत् माम अवतु।
तत् वक्तारम अवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Translitration

om sham no mitrah sham varunah
sham no bhavatu aryama sham na indro brhaspatih
sham no vishnur urukramah
namo bramhane / namaste vayo/
tvameva pratyaksham brahmasi
tvameva pratyaksham brahma vadishyami
rtam vadishyami / satyam vadishyami
tat mam avatu / tat vaktaram avatu
avatu mam / avatu vaktaram
om shantih shantih shantih

पद्यानुवाद

ॐ नः मित्रः शम् वरुणः शम्। अर्यमा
नः शम् भवतु। इन्द्रः वृहस्पतिः
नः शम्। उरूक्रमः विष्णुः
नः शम्। ब्रह्मणे नमः।
वायो ते नमः।
त्वम् ववं प्रत्यक्षम्
ब्रह्म असि। त्वाम् एव प्रत्यक्षम् ब्रह्म वदिष्यामि।
ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तत् माम अवतु।
तत् वक्तारम अवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थ

नः-हमारे लिये, मित्रः (दिन और प्राण के अधिष्ठाता) मित्र देवता, शम् (भवतु) कल्याणप्रद हो (तथा), वरुणः (रात्रि और अपान के अधिष्ठाता) वरुण (भी), शम् (भवतु)-कल्याणप्रद हो, अर्यमा (चक्षु और सूर्य-मण्डल के अधिष्ठाता) अर्यमा, नः हमारे लिए, शम् भवतु-कल्याणकारी हो, इन्द्र (बल और भुजाओं के अधिष्ठाता) इन्द्र (तथा), बृहस्पति (वाणी और बुद्धि के अधिष्ठाता) बृहस्पति, नः (दोनों) हमारे लिए, शम् (भवताम्) शान्ति प्रदान करने वाले हो, उरूक्रमः त्रिविक्रमरूपसे विशाल डगोंवाले, विष्णुः-विष्णु (जो पैरों के अधिष्ठाता हैं), नः हमारे लिए, शम् (भवतु) कल्याणकारी हो, ब्रह्मणे (उपर्युक्त सभी देवताओं के आत्म स्वरूप) ब्रह्मके लिए, नमः-नमस्कार है, वायो हे वायुदेव, ते-तुम्हारे लिए, नमः नमस्कार है, त्वम्-तुम, एव-ही, प्रत्यक्षम्-प्रत्यक्ष (प्राणरूपसे प्रतीत होने वाले), ब्रह्म-ब्रह्म, असि-हो,(इसलिए मैं) त्वाम्-तुमको, एव ही, प्रत्यक्षम्-प्रत्यक्ष, ब्रह्म-ब्रह्म, वदिष्यामि कहूंगा, ऋतम् (तुम ऋतके अधिष्ठाता हो, इसलिए मैं तुम्हें) ऋत नाम से, वदिष्यामि-पुकारूँगा, सत्यम् (तुम सत्यके अधिष्ठाता हो, अतः मैं तुम्हें) सत्य नाम से, वदिष्यामि कहूंगा, तत्-वह (सर्वशक्तिमान् परमेश्वर), माम् अवतु-मेरी रक्षा करें, तत्-वह, वक्तारम् अवतु-वक्ताकी अर्थात् आचार्य की रक्षा करें, अवतु माम्-रक्षा करे मेरी, (और), अवतु वक्तारम्-रक्षा करें मेरे आचार्य की, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः-भगवान् शान्तिस्वरूप हैं, शान्तिस्वरूप हैं, शान्तिस्वरूप हैं।

अर्थ

मित्र देवता हमारे लिए कल्याणकारी हों। वरुणदेव हमारे लिए सुखप्रद हों। अर्थमादेव कल्याणकारी हों। इन्द्र तथा बृहस्पतिदेव सुखदायक हों। जिनके डग बहुत विशाल हैं, वे विष्णुदेव हमारे लिए शान्तिप्रद हों। ब्रह्म को नमस्कार है। हे वायो ! आपको नमस्कार है, क्योंकि आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहते हैं। सत्य और ऋत भी आपको कहते हैं। वह (ब्रह्म) हमारी रक्षा करें। हमारे आचार्य की रक्षा करें। हमारी तथा हमारे आचार्य दोनों की रक्षा करे। त्रिविध तापों से सर्वत्र शान्ति हों। त्रिविध (आधिभौतिक) आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ताप शान्त हों।

सामवेद से सम्बद्ध सभी उपनिषद् यथा केन, छान्दोग्योपनिषद् आदि

(Shanti Mantras for all Upanishads associated with Samaveda i.e. Ken, Chandyogya etc.)

5. ॐ आप्यायन्तु ममाग्नि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो
बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मोपनिषदं
माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्
अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे स्तु।
तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु
धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Translitration

apayantu mamangani vak pranah chakshuh shrotram
atho balam indriyani cha sarvani
sarvam brahma-upanishadam
ma aham brahma nirakuryam
ma ma brahma nirakarod
anirakaranam astu anirakaranam me astu
tad atmani nirate ya upanishatsu
dharmaste mayi santu te mayi santu
om shantih shantih shantih

Translation

May my members increase unto my speech, vision,
hearing, and my strength and all my organs;
All is the Eternal of the Upanishad.
May I never reject the Eternal;
May He never reject me;
Let rejection be far from me; let rejection be far.
When I have found Delight of the Self as my possession,
may it be in my possession.
May the Law (dharma) that is declared here be in me.
Om ! Peace ! Peace ! Peace !

पद्यानुवाद

ॐ मम अंगानि वाक् प्राणः
चक्षु श्रोत्रम् च सर्वाणि इन्द्रियाणि अथो
बलम् आप्यायन्तु। सर्वम्
औपनिषदम् ब्रह्म अहम् मा निराकुर्याम्
ब्रह्म मा निराकरोत् अनिराकरणम् अस्तु
मे अनिराकरणम् अस्तु। उपनिषत्सु
ये धर्माः ते तदात्मनि निरते मयि सन्तु
ते मयि सन्तु।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थ

ॐ-हे परब्रह्म परमात्मन्, मम् मेरे, प्राणः प्राण, चक्षुः नेत्र, ओत्रम् कान, च और, सर्वाणि सब, इन्द्रियाँ अपी तथा, बलम् शक्ति, आप्यायन्तु परिपुष्ट हों, सर्वम् (यह जो) सर्वरूप, औपनिषदम् उपनिषद्-प्रतिपादित, ब्रह्म ब्रह्म है, अहम् मैं, ब्रह्म इस ब्रह्म को, मा निराकुर्याम् अस्वीकार न करूँ, (और) ब्रह्म ब्रह्म, मा मुझको, मा निराकरोत् परित्याग न करे, अनिराकरणम् (उसके साथ मेरा) अटूट संबंध, अस्तु हो, मे मेरे साथ, अनिराकरणम् (उसका) अटूट संबंध, अस्तु हो, उपनिषत्सु- पनिषदों में प्रतिपादित, ये जो, धर्माः धर्मसमूह हैं, ते वे सब, तदात्मनि उस परमात्मामें, निरते लगे हुए, मयि मुझमें, सन्तु हो, ते वे सब,

मयि मुझमें, सन्तु हो। ॐ हे परमात्मन्, शान्तिः शान्तिः शान्तिः त्रिविध तापों की निवृत्ति हो।

अर्थ

हे परमात्मन्! हमारे सभी अंग पुष्ट हों, हमारी वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत, बल और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट हों। यह उपनिषद् ज्ञान ब्रह्म है, हम इसे अस्वीकार न करें। यह हमारा परित्याग न करे। हमारा इसके साथ अथवा इसका हमारे साथ अविच्छिन्न संबंध हो। उपनिषदों में जो (धर्म, ज्ञान आदि) वर्णित हैं, वे हममें प्रविष्ट हों, हममें समाविष्ट हों। त्रिविध तापों की शान्ति हो।

शिवसंकल्पसूक्त

शिवसंकल्पसूक्त

अनारभ्याधीतोऽध्यायः आपितृमेधात् आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टाः मन्त्रः पाठे विनियुक्ताः। षडश्चस्त्रिष्टुभी मनोदवत्याः शिवसंकल्पह्रश्टाः।।1।।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।1।।

पद पाठ

यत्। जाग्रतः। दूरम्। उदैतीत्युत्। ऐतिं। दैवम्। तत्। ऊँऽइत्यूँ। सप्तस्य। तथा। एव। एति। दूरङ्गममिति दूरं। गमं। ज्योतिषां। ज्योतिः। एकम्। तत्। मे। मनः। शिव संकल्पमिति शिव। संकल्पम्। अस्तु।।1।।

भाष्य

ऋशिर्वदति। तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु शिवः कल्याणकारी धर्मविपयः संकल्पों स्य तत् तादृशं भवतु। मन्मनसि सदा धर्म एव भदतु न कदाच्चिपापमित्यर्थः। तत्किम्। यत् मनो जाग्रतः पुरुषस्य दूरमुदैति उद्राद्यपेक्षया मनी दूरगामीत्यर्थः। यच्च दैवं दीव्यति प्रकाशते देवो विज्ञानात्मा तत्र भवं दैवमात्पग्राहकमित्यर्थः। मनसेव द्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् इति श्रुतेः। तत् उ। यदः स्थाने तच्छब्दः उकारश्चार्थः। यच्च मनः सुप्तस्य पुंसः तथैव इति यथा गतं तथैव पुनरागच्छति स्वापकाले सुशुप्तावस्थायां पुनरागच्छति। यच्च दुरंगमं दूरात् गच्छतीति दुरगम् खश्प्रत्ययः। अतीतानागतवर्तमानविप्रकष्टव्यवहितपदार्थनां ग्राहकमित्यर्थः। यच्च मनो ज्योतिशां प्रकाशकानां श्रोत्रदोन्द्रियाणमेकमेव ज्यातिः प्रकाशकं प्रवर्तकमित्यर्थः। प्रवर्तितान्येव श्रोत्रदीन्द्रियाणी स्वविज्ञये प्रवर्तन्ते। आत्मा मनसा संयुज्यते मनः इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थेनेति न्यायोक्तेर्मनः संबन्धमन्तरा तेशामप्रवृत्तेः। तादृशं मे मनः शान्तसंकल्पमस्तु।।

शब्दार्थ

यत् जो मन, जाग्रताः जागते हुए मनुष्य का, दूरम् दूर, उदैति-जाता है, दैवम् आत्मदर्शन करने वाला, तत् जो, उ और, सुप्तस्य सोये हुए मनुष्य का, तथा इसी प्रकार, एव ही, एति लौट आता है, दूरंगमन् दूर जानेवाला अर्थात् अतीत, अनागत, वर्त्तमान सब पदार्थों को जाननेवाला, ज्योतिशाम् श्रोत्रदि ज्ञानेन्द्रियों का, ज्योतिः प्रकाश, एकम् एकमात्र, तत् वह, मे मेरा, मनः मन, शिवसंकल्पम् मंगलकारक संकल्पवाला, अस्तु होवे।

हिन्दी अनुवाद

जो मन पुरुष की जाग्रत अवस्था में (नेत्र आदि अन्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा) अधिक दूर जाता है, जो एक मात्र आत्मा का दर्शन करने वाला है, जो पुरुष की सुषुप्ति अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में दूर जाता है, और जो सब बाह्य इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

Translation

May that mind of mine, which goes farther off (than other sense organs like eye etc.) when one is awaking, which alone is the perceiver of the soul, which comes back in the same way (in which) it goes away when one is sleeping, (which is) far-going and which is the sole light of all external organs, be of auspicious resolution.

Notes

उदैति-उत्+आ+/प to go, pres. 3rd. sing. not unaccented because by यत् तत् - It is used in the sense of यत् making the verb ,fr to be accented.

टिप्पणी

उदैति मही. उद्गच्छति, चद्गच्छति, चक्षुराद्यपेक्षया मनो दूरगामीत्यर्थः।

दैवम् उ. देवो विज्ञानात्मा, सोऽनेन गृह्यत इति दैवम्। मही. दीव्याति प्रकाशते देवो विज्ञानत्मा भवं दैवमात्मग्राहकमित्यर्थः 'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयं ध्रुवम्' इति श्रुतेः।

तद्धु उ. तदः स्थाने यदो वृत्तिः, उकारः समुच्चयार्थीयः (और जो)।

दूरंगमम् मही. दूरात गच्छतीति दूरगमम् खश्प्रत्ययः। अतीतानागतवर्तमानविप्रकृष्टव्यवहितप्रदार्थानां ग्राहकमित्यर्थः।

ज्योतिषां ज्योतिरेकम् मही. ज्योतिषां प्रकाशकानां श्रीत्रादीन्द्रियाणमेकमेव ज्योतिः प्रकाश प्रवर्तकमित्यर्थः। प्रवर्तितान्येव श्रोतादीन्द्रियाणि स्वविषये प्रवर्तन्ते। आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणोन्द्रियमर्थेनेति न्यायोक्तेर्मेनः संबंधमन्तरा तेषामप्रवृत्तेः।

शिवस कल्पम् उ. संकल्पः काममूलपदार्थस्रू स्र्यादेः सुरूपताज्ञानवतः कामप्रभृति शान्तसंकल्पम्। मही. शान्तसंकल्पम् शिवः कल्याणकारी धर्म विषयः संकल्पो यस्य तत् तादृशं भवतु मन्मनसि सदा धर्म एव भवतु न कदाचित पापमित्यर्थः।

येन कर्माण्यपसो मनीषियो यज्ञे कण्वन्ति विदर्थेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।2।।

पद पाठ

येन्। कर्माणि। अपसः। मनीविणः। यज्ञे। कृण्वन्ति। विदर्येशु। धीराः। यत्। अपर्वम्। यक्षम्। अन्तरित्यन्तः। प्रजानामितिं प्र। जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसंकल्पमिति शिव। संकल्पम्। अस्तु।।2।।

महाभाष्य

मनीषिणः मेधाविनः यज्ञे येन मनसा सता कर्माणि कुण्वन्ति कुर्वन्ति 'कृ करणे' स्वादिः। मनः स्वास्थ्यबिना कर्माप्रवृत्तेः। केषु सत्सु विद्यन्ते ज्ञायन्ते तानि विद्यानि तेषु। वेत्तेरौणादिकोऽयप्रत्ययः प्रत्ययोदात्तत्वेन मध्योदात्तं पदम् 'प्रत्ययः परश्र आद्युदात्तश्र' (पा. सू. 3.1.1-3) इति पाणिन्युक्तेः यज्ञसंबन्धिनां हविरादिपदार्थाना ज्ञानेषु सत्स्वित्यर्थः। कीदृशा मनीशिणः। अपसः अप इति कर्मनाम (निघ. 2.1.1)। अपो विद्यते येशां ते अपस्विनः कर्मवन्तः 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (पा.सू. 5.2. 121) इति विन्प्रत्ययः विन्मतोसुक इतीष्ठाभावेऽपि छान्दसो विनो सुक् (पा.सू. 5.3. 65)। सदा कर्मनिष्ठा इत्यर्थः। तथा धीरा श्रीमन्तः धीविद्यते येशां ते धीराः कर्मव्यण् (पा. सू. 3.2.1)। यच्च मनः अपूर्वम् न विद्यते पूर्योमिन्द्रियं यस्मात्तदपूर्वम् इन्द्रियेभ्यः पूर्व प्रजमः सृष्टोः। यदा अपूर्वमनपरमबाह्यमित्युक्तेरपूर्वमात्मरूपमित्यर्थः। यच्च यक्षं यष्टुं शक्तं यत्रम्। यजतेरौभादिकः सन्प्रत्ययः नित्यादिनित्यम् (पा.सू. 6.1.17)। इत्याद्युदात्तं पदम्। यच्च प्रजायन्ते इति प्रजास्तामां प्राणिमात्रणामन्तः शरीरमध्ये आस्ते इतरेद्रियाणि बहिष्ठानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः। तत् तादृशं मे मनः शिवसंकल्पमस्त्विनि व्याख्याताम्।।

शब्दार्थ

येन जिस मन से, कर्माणि काम, अपसः कर्मनिष्ठ, काम करने की आदत डालने वाले मनुष्य, मनीषिणः मेधावी पुरुष, यज्ञे एक में, कृवान्त करते हैं, विद्येषु उपासनाओं में, धीराः बुद्धिमान पुरुष, यत् जो मन, अपूर्वम् जिसके पहिले कोई इन्द्रिय वही दोनों अर्थात् सब इन्द्रियों से पहले उत्पन्न होने के कारण पूज्य, अन्तः शरीर के भीतर, प्रजानाम् प्रजा के, तत् वह, मे मेरा, मनः मन, शिवकंल्पम् शुभ संकल्पवाला, अस्तु हो।

हिन्दी अनुवाद

जिस मन से कर्मनिष्ठ बद्धिमान मेधावी पुरुष यज्ञ में तथा उपसको के कर्म करते हैं, और सब (इन्द्रियों) से पहले उत्पन्न होता है और यज्ञ करने में समर्थ है, और जो प्राणिमात्र के शरीर के भीतर रहता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

Translation

May that mind of mine, through which resolute and intelligent men, devoted to the performance of religious rights, do their work in sacrifice and worship; which is unpreceded, (which is) capable of performing sacrifices and (which is) present in the body of all living beings, be of auspicious resolution.

अपस, The wont vil] being accented on the sufix, is an adi of euhf'k.k; bowever when it baears the accent on the root it becomes action noun meaning work, कृण्वन्ति. 'To make', pres. 3rd. plu; not unaccented because preceded by येन, अन्तः. Here visarijaniya is rhotacised one; hence, bfr in the padatext. It is to be noted that in the Padatext of the Yajurveda the word is repeated after इति. विव्येशु-विद्य means worship. Mahidhara, however, takes it to mean on knowing the oblation, *etc.*

टिप्पणी

अपस कर्मशील, अपस्, शब्द अंतोदात्त होने पर विशेषण (कर्मशील) होता है। आयुदात्त होने पर यह संज्ञाप्रद (कर्म) होता है। मही.-अप इति (पा. 5/2/121) इति विन्प्रत्ययः 'विन्मतोर्लुक्' इतीष्ठाभावेऽपि छान्दसो बिनो लुक् (पा. 4/3/65) सदा कर्मनिष्ठा इत्यर्थः।

कृण्वन्ति √कृ स्वादि. परस्मै. लट्. प्र.पु.बहु. वाक्य में यत् (येन) का प्रयोग होने के कारण 'आद्युदात्तश्च' (पा. 3/1/3) से प्रत्यय 'अन्ति' का आदि उदात्त है।

विदेथे षु उ. वेदनेषु यज्ञविधिविधानेषु, मही. ज्ञानेषु सत्सु विद्यन्तेतानि विदथानि तेषु। वेत्तैरौणादिकोऽथप्रत्ययः, प्रत्ययोदत्तत्वेन मध्योदात्तं पद्म् 'आद्युदात्तश्च' (पा. 3/1/3) इति पाणिन्युक्तेः यज्ञसंबन्धिनां हविरादिपदार्थानां ज्ञानेषु सत्स्वित्यर्थः। यास्क (नि. 1/7) ने ऋ. 2/11/21 के अंतर्गत 'विदेथे' का अर्थ 'स्वे वदने' किया है। 'वदने' का अर्थ अधिकांश भाष्यकारों ने 'गृहे' या 'यज्ञे' दिया है। परन्तु यास्क ने स्वयं अन्य स्थलों (यथा नि. 3/12 में विदथा-वेदनेन, नि. 6/7 में विदथानि) पर जो 'वेदन' अर्थ दिया है उससे भाष्यकारों ने 'ज्ञान' ही समझा है। अतः अधिकतर इस शब्द का 'ज्ञान अर्थ ही यास्क को अभिप्रेरित प्रतीत होता है। सायण ने (1) ऋ. 1/31/6 क अंतर्गत 'विदथे' का अर्थ 'कर्मणि' दिया है और (2) ऋ. 1/40/6 के अंतर्गत 'विदथेषु' का अर्थ 'यज्ञेषु' देते हुए उसका निर्वचन इस प्रकार किया है विद ज्ञाने, विद्यते फलसाधनत्वेन ज्ञायते इति विदथे यज्ञः 'रुविदिभ्यां कित्' (उणादि. 3/395) इतिप्रत्ययः। (3) ऋ. 1/143/7 के अंतर्गत सा. ने. 'विदथेषु की व्याख्या 'यज्ञेषु वेदयत्सु स्तोत्रेषु निमित्तभूतेष' की है। स्वा. द. ने उपर्युक्त प्रथम स्थल पर 'धर्म्वे युद्धे यज्ञे' अर्थ किया है क्योंकि निघं. 3/17 में विदथ शब्द संग्राम क नामों में आया है। द्वितीय स्थल पर उन्होंने नि. 6/7 के साक्ष्य पर 'विज्ञानेषु पठनपाठनव्यवहारेषु कर्त्तव्यषु त्सु' अर्थ किया है। तृतीय प्रसंग में फिर 'संग्रामेषु' अर्थ दिया गया है। अर. के अनुसार इसका अर्थ 'ज्ञान' अथवा 'ज्ञान का अन्वेषण' (नॉलेज, डिस्कवरी ऑफ नॉलेज) है। पी. ने इस शब्द पर टिप्पणी देते हुए इसका वि√धा (बाँटना, व्यवस्थित करना, विधान करना) से माना है। इय मूल धात्वर्थ के अनुसार वैदिक ऋषियों के विचार में सर्वाधिक कृत्रिम रूप से 'विहित' वस्तु का प्रमुख उदाहरण 'यज्ञ' और 'विधान' लगभग पर्याय हो गये। अन्ततः 'विदथ' का अर्थ 'किसी कार्य को निबटाना' जैसा प्रतीत होता है। अतः 'विदथ' और 'सभा' शब्दों के अर्थ एक-दूसरे के निकट आते प्रतीत होते हैं। इसी आधार पर सम्भवतया पी. तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने इस शब्द का अर्थ 'सभा' (असेम्बली) किया है। किंतु स्पष्ट ही √विद (जानना) से व्युत्पन्न दिखाई देने वाले इस शब्द के लिए 'वि√धा' की कल्पना करना अनावश्यक है। इसका अर्थ ज्ञान, ज्ञानसत्र, ज्ञान-प्रसंग-ज्ञान या विचारविमर्श का स्थल अधिक उचित प्रतीत होता है। इस मंत्र में यज्ञ और विदथ शब्दों के एक साथ आने से उनका भिन्नार्थक होना निश्चित प्रतीत होता है।

अपूर्वम् मही.-न विद्यते पूर्वमन्द्रियं यस्मात्तदपूर्वम् इन्द्रियेभ्यः पूर्व सनमः सृष्टेः। यदा अपूर्वमनपरमबाह्यमित्युक्तेरपूर्वक्। आत्मरूपमित्यर्थः।

यक्षम् उ.-पूज्यम्, मही.यष्टुं शक्तं यज्ञम्, यजतेरौणादिकः संप्रत्ययः।

अन्यः इस पद के अंत में रिफित विसर्जनीय होने के कारण पदपाठ में 'इति' लगाकर इसकी चर्चा अर्थात् द्विरुक्ति की गई है। मही.-इदं मनः प्राणिमात्रमन्तः शरीरमध्ये आस्ते इतरेन्द्रियाणि बहिष्ठानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः।

यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चु न कर्म क्रियते तन्मे मन : शिवसङ्कल्पमस्त।। 3।।

पद पाठ

यत्। प्रज्ञानमिमिमप्र। ज्ञानम्। उत। चैतः। घृशतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्विति प्र। जासु।। यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव। संङ्कल्पम्। अस्तु।।3।।

भाष्य

यत् मनः प्रज्ञानं विशेषेण ज्ञानजनकम् प्रकर्षेण ज्ञायते येन तत् प्रज्ञानम्। 'करणाधिकरणयोश्च' (पा.सू. 3.3.117)। इति करणे ल्युट्प्रत्ययः। इत अपि यत् मनः चेतः चेतयति सम्यक् ज्ञापयति तच्चेतः। 'चिती संज्ञाने' अस्मात् पन्तादसुन्प्रत्ययः। सामान्यविशेषज्ञानमनकमित्यर्थः। यच्च मनो धृतिधैर्यरूपम्। मनस्येव धैर्योत्पत्तेर्मनसि धैर्यमुपचर्यते कार्यकारणयोरभेदात्। यच्च मनः प्रजासु जनेषु अन्तर्वतेमानं सत् ज्योतिः आत्मानुभूति के आनन्द में उसे और कुछ ज्ञातव्य नहीं रहता। 'जो कुछ स्थावर और जगत है, प्रज्ञा ही उसकी दृष्टि है, प्रज्ञान में प्रतिष्ठित है, लोक की दृष्टि प्रज्ञा है, प्रज्ञा प्रतिष्ठा है, प्रज्ञान ब्रह्म है। इस रूप में मन और बुद्धि का परमोत्कर्ष एक हो गए हैं। चेतस् शब्द का संबंध 'चिन्तन करना, जानना, समझना' क्रियाओं से है। इसका निर्वचन 'चित्त' के समान ही चित्त् (संज्ञाने) से किया जा सकता है चेतति अनेन अर्थात्। धृति मन की धारण शक्ति है। यह 'धी' भी कही जा सकती है। इसमें धृ (धारणार्थक) बहुत स्पष्ट है। गीता के प्रयोग से भी इसके उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि होती है। इसी प्रकार अमरकोष में जहाँ धृति के कारण और धैर्य दोनों पर्याय दिए गये हैं। (धृतिर्धारणधैर्ययोः), वहाँ भी धारण मन की धारण शक्ति ही प्रतीत होती है।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतम्मृतेन् सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। 4।।

पद पाठ

प्रकाशकं सर्वेन्द्रियाणाम्। उक्तमपि पुनरुच्यते आदरार्थम्। 'अभ्यासे भूयांसमथ मन्यन्ते' (निरु. 10.28) इति यास्कोक्तेः। यच्चामृतममरणधर्मि आत्मरूपत्वात्। यस्मान्मनसः ऋते यन्मनो विना किंचन किमपि कर्म न क्रियते जनैः। सर्वकर्मसु प्राणिनां मनः पूर्व प्रवृत्तेर्मनःस्वास्थ्यबिना कर्माभवादित्यर्थः। 'अन्यारादितरत' (पा.सू. 2.2.29) इत्यादिना यस्मादिति ऋतेयोगे पंचमी। तन्मे मन इति व्याख्यातम्।।

शब्दार्थ

यत् जो मन, प्रज्ञानम् विशेष ज्ञान का साधन, उत और, चेतः सामान्य ज्ञान करानेवाला, धृतिः धैर्य रूप, च और, यत् जो, ज्योतिः प्रकाशक, अन्तः भीतर, अमृतम् अमर, प्रजासु प्राणियों में, यस्मात् जिससे, न नहीं, ऋते बिना, किम् कुछ, यन भी, कर्म काम, क्रियते किया जाता है, तत् वह, मे मेरा, मनः मन, शिवसंकल्पम् शुभ संकल्पवाला, अस्तु हो।

हिन्दी अनुवाद

जो मन विशेष ज्ञान और सामान्य ज्ञान (का साधन) है, जो धैर्य-रूप है, जो प्राणियों के भीतर (सब इन्द्रियों को प्रेरित करनेवाली) अमर ज्योति है, और जिसके बिना कोई काम नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

Translation

May that mind of mine, which is the instrument of gaining special and general knowledge, which is steadiness itself, which is the immortal light in living beings (that directs the external organs to their respective objects) and without which no work is possible, be of auspicious resolution.

टिप्पणी

प्रज्ञानम् चेतः धृति उ. विशेषप्रत्तिप्रज्ञानम्, सामान्यप्रतित्तिचेतः, धृतिश्च प्रसिद्ध, मही विशेषण ज्ञानजनकम् प्रकर्षेण ज्ञायते येन तत् प्रज्ञानम्:; 'करणाधिकरणयोश्च' (पा. 3/3/117) इति करणे ल्यूट्प्रत्यः, चेतयति सम्यक् ज्ञापयति तच्चेतः, 'चिती संज्ञाने' अस्मात्' ण्यन्तादसुन्प्रत्ययः। सामान्यविशेषज्ञान-जनकमित्यर्थः। यच्च मनो धृतिर्धैर्यरूपम्। मनस्येव धैर्योत्पत्तेर्मनसिं धैर्यमुपचर्यते कार्यकारणयोरभेवात्। ऋग्वेद में (खिल सूक्त 4/11 को छोड़कर) 'प्रज्ञज्ञनम्' और 'धृतिः' शब्दों का अभाव है। हाँ, 'प्रज्ञातारः' शब्द केवल एक बार (10/78/2 में) आया है। चेतस् शब्द ऋग्वेद में कुल छः बार आया है और इन सभी स्थलों पर इसका प्रयोग तृतीयान्त रूप 'चेतसा में हुआ है। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि 'चेतस्' अधिकतर करण के रूप में माना जाता था। तदनुसार चेतस् (मन) तत्त्वों को जानने, समझने वाला तत्त्व है। शुक्ल यजुर्वेद के प्रस्तुत मन्त्र में ये तीनों शब्द प्रथम बार एक साथ आये हैं। इससे इनके भावों में सूक्ष्म भेद ऋषि को अभीष्ट है। प्रज्ञान वस्तुतः मन की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है जिसमें

यत्। प्रज्ञानमिमिम्प्र। ज्ञानम्। उत। चैतः। धृशतिः। च। यत्। ज्योतिः। अन्तः। अमृतम्। प्रजास्विति प्र। जासु।। यस्मात्। न। ऋते। किम्। चन। कर्म। क्रियते। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव। संङ्कल्पम्। अस्तु।।3।।

येन। इदम्। भूतम्। भ्रुवनम्। परिगश्हीतमिति परि। गृहीतम्। अमूर्तेन। सर्वम्।। येन। यज्ञः। तायर्ते। सप्तहोतेति सप्त। होता। तत्। मे। मनः। शिवसङ्कल्पमिति शिव। संङ्कल्पम्। अस्तु ।।4।।

भाष्य

येन मनसा इदं सर्व परिगृहातम् परितः सर्वतो ज्ञातम्। इदं किभूतम्। भूतकालसंबन्धि। भविष्यत् 'लृटः सद्वा' (पा.सू. 3.3.14) इति शनप्रत्ययः 'तौ सत्' (पा.सू. 3.2.127) इत्युक्तेः त्रिकालसंबद्धवस्तुशु मनः प्रवर्तत इत्यर्थः। श्रोत्रदीनि तु प्रत्यक्षमेव गृहन्ति। कीह्रशेन येन। अमृतेन शाश्वतेन। मुक्तिपर्यन्तं श्रोत्रदीनि नश्यान्त मनस्त्वनश्वरमित्यर्थः। येन च मनसा यज्ञोऽग्निश्टोमादिः तायते विस्तार्यते। 'तनोतेर्यकि' (पा.सू. 6.4.44) इत्याकारः। कीह्रशो यज्ञः। सप्तहोता सप्तहोतारो देवानामाह्हातारो होतृमैत्रचरूणादयो यत्र स सप्तहोता। अग्निष्टोमे सप्तहोतारो भवन्ति। तन्मे मन इति व्याख्यातम्।

शब्दार्थ

येन् जिस मन के द्वारा, इदम् वह, भूतम् भूतकाल का, भुवनम् वर्तमान काल का, भविष्यत् भविष्यकाल का, परिगृहीतम् जाना जाता है, अमृतेन अमर मन के द्वारा, सर्वम् संसार का सब वस्तुजात, येन जिस मन के द्वारा, यज्ञः यज्ञ, तायते किया जाता है, सप्तहोता सात होतावाला अग्निष्टोम, तत् वह, मे मेरा, मनः मन, शिवसंकल्पम् शुभ संकल्प वाला, अस्तु हो।

हिन्दी अनुवाद

जिस अमर मन के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के सब पदार्थ जाने जाते हैं और जिसके द्वारा सात होता वाला (अग्निष्टोम) यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

Translation

May that mind of mine, which is immortal, by which every thing is known in this world in present, past and future, and by shich the (Agnistoma) sacrifice, presided over by seven priests, is performed, be of auspicious resolution.

Notes

तायते-tan 'to stretch'. यक् 'अ' पद initial 'त' of the root is lengthened (ruksrs;sfd-Pap.VI4.44) passive, Atm, pres. 3rd. sing.

टिप्पणी

परिगृहीतम् मही.-परितः सर्वतो ज्ञातम्, त्रिकालसम्बद्धवस्तुषु मनः प्रवर्तत इत्यर्थः। श्रोतादीनि तु प्रत्यक्षमेव गृहणन्ति।

अमृतेन मही.-शाश्वतेन, मुक्तिपर्यन्त श्रोतादीनि नश्यन्ति मनस्त्वनश्वर मित्यर्थ।

सप्ताहोता मही.-सप्त हातारो देवानामाह्वातारो होतृर्मत्रावरुणादयो यत्र स सप्तहोता। अग्निष्टोमे सप्त होतारो भवन्ति।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभार्विवाराः।
यस्मिꣳश्चितꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।5।।

पद पाठ

यस्मिन्। ऋचः। यजूंशि। यस्मिन्। प्रतिष्ठिता। प्रतिस्थितेति प्रति। स्थिता। रथनाभाविवेति रथनाभौ। इव। अराः।। यस्मिन्। चित्तम्। सर्वम्। ओतमित्या। उतम्। प्रजानामिति प्र। जानाम्। तत्। मे। मनः। शिवसंङ्कल्पमिति शिव। संङ्कल्पम्। अस्तु। ।5।।

महाभाष्य

यस्मिन् मनसि ऋचः प्रतिष्ठिता। यस्मिन् साम सामानि प्रतिष्ठितानि। यस्मिन् यजूंशि प्रतिष्ठितानि। मनसः स्वास्थ्ये एव वेदत्रयीस्फूर्तेमनसि शब्दमात्रस्य प्रतिष्ठितत्वम् 'अन्नभयं हि सोभ्य मनः' छान्दाये मनस एव स्वास्थ्ये वेदोच्चारण्यति प्रतिपादिता। तत्र दृष्टान्तः। रथनाभौ अराः इव। यथा अराः रथचक्रनाभो मध्ये प्रतिष्ठितास्तद्वच्छब्दजालं मनसि। किंच प्रजानां सर्वं चितं ज्ञानम् सर्वपदार्थविशयिज्ञानं यस्मिन् मनसि ओतं प्रोतं निक्षिप्तं तन्तुसन्ततिः पटे इव सर्वं ज्ञानं मनसि निहितम्। मनः स्वास्थ्य एव ज्ञानोत्पत्तिर्मनोवैयग्रये च ज्ञानाभावः। तन्मे मम मनः शिवसंकल्पं शान्तव्यापारमस्तु।।

शब्दार्थ

यस्मिन् जिस मन में, ऋचः ऋचाएँ, सान-सामगान, यजूंशि यजु, यस्मिन् जिस में, प्रतिष्ठिताः प्रतिष्ठित है, रथनाभौ इव रथचक्र की नाभी के समान, अराः तिल्लियाँ, यस्मिन् जिसके, चित्तम् ज्ञान, सर्वम् सर्वपदार्थविशयक, ओतम् प्रोत है, प्रजानाम् प्रजा का, तत् वह, मे मेरा, मनः मन, शिसंकल्पम् शुभ संकल्पवाला, अस्तु हो।

हिन्दी अनुवाद

रथचक्र की नाभि में तिल्लियों की तरह जिस मन में ऋचाएं, साम और यजु प्रतिष्ठित होते हैं, जिसमें प्राणियों का सर्वपदार्थविषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो ।

Translation

May that mind of mine, in which the Rks, the Samans and the yajus are set up like the spokes in the nave of a wheel and in which all knowledge of living beings is woven, be of usoicious resolution.

Note

रथनाआदिवाराः- Here simile has been given to explain the relation of mind with Rks etc. यस्मिन् चितम् -From this and the previous verses is appearsthat the Nyaya theory of knowledge is acceptable to the white Yajurveda. According to this theory, all knowledge passes to the mind through sener organs, and from there to the soul. ओतम्-आ to go+ क्त. व with the penultimate vowel has changed in to m by samprasaraha.

टिप्पणी

प्रतिष्ठता मही.-प्रतिष्ठितानि। मनसः स्वास्थ्ये एवं वेदत्रयीस्फूर्तेम। नसि शब्दमात्रस्य प्रतिष्ठितत्वम् 'अन्नमय हि सोम्य मनः' इति छान्दोग्ये मनस एव स्वास्थ्ये वेदोच्चारणशक्तिः प्रतिपादिता। तत्र दृष्टान्तः। यथा आराः रथचक्र नाभौ मध्ये प्रतिष्ठितः तद्वच्छब्दजालं मनसि।

चित्तम् उ.संज्ञानम्, मही. ज्ञानं सर्वपदार्थविषयि ज्ञानम्।

ओतम् निक्षिप्तम्, मनःस्वास्थ्ये एवं ज्ञानोत्पत्तिर्मनोवैयग्र्ये ज्ञानाभवः।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
दृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठि तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।6।।

पद पाठ

सपारथिः। सुसारथिरिति सु। सारथिः। अश्वानिनेत्यश्वान्। इव। यत्। मनुश्यान्। नेनीयते। श्रुभीशुभिरित्यमीः। मिः। वाजिनऽङ्वेतिवाजिनः। इव।।हृत्प्रतिष्ठम्। इत्प्रतिस्युमिति इत्। प्रतिस्थम्। यत्। अजिरम्। जविष्ठम्। तत्। मे। मनः। शिवसंङ्कल्पमिति शिव। संङ्कल्पम्। अस्तु।।6।।

भाष्य

यत् मनो मनुष्यान्नरान्नेनीयते अत्यर्थमितस्ततो नयति। नयतेः क्रियासमभिहारे यङ्। मनः प्रेरिता एव प्राणितः प्रवर्तन्ते। मनुष्यग्रहणं प्राणिमात्रेपलक्षकम्। तत्र हृटान्तः। अभीशुभिर्वाजिन इव यथा सुसारथिरभीशुभिः प्रग्रहैःवाजिनोऽश्वान्नेनीयत इत्यनुष्ड.ः। रश्मिभिनियच्छतीत्यर्थः। उपमाद्वयम्। प्रथमायां नयनं द्वितीयायां नियमनम्। तथा मनः प्रवर्तयति नियच्छति च नरानित्यर्थः। यच्च मनः हृत्पतिष्ठं हृदि प्रतिष्ठा स्थितियस्य तत् हृद्येव मन उपलभ्यते। यच्च मनः अजिरं जरारहितम् वल्ययौवनस्थविरेशु मनसस्तदवस्थत्वात्। यच्च जविष्ठम् अतिजववद्वेगवत् जविष्ठम् न वै वातात्किंचनाशीयोऽस्ति इति श्रुतेः। तन्म इत्युक्तम्।।

शब्दार्थ

सुशारथिः अच्छा सारथी, अश्वान् इव जैसे घोड़ों को, यत् जो मन, मनुश्यात् मनुष्यों को नैनीयते अत्यन्त इधर उधर ले जाता है, अभीशुभिः लगामों

से, वाजिनइव जैसे घोड़ो को, हृत्पतिष्ठम्-हृदय के स्थिर, यत्-जो, तत्-वह, मे-मेरा, मनः-मन, शिसंकल्पम्-शुभ संकल्पवाला, अस्तु-हो।

हिन्दी अनुवाद

जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को इधर-उधर प्रेरित करता है, और लगामों से उन्हें अपने वश में रखता है, उसी प्रकार जो मन प्राणियों को बार-बार इधर-उधर प्रेरित करता है और अपने वश में रखता है, जो हृदय में स्थित है, जो जरा से रहित और अत्यन्त वेगवान है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

टिप्पणी

सुषारथिः उ. कल्याणसारथिः, मही. शोभनः यह स्वरविषयक अपवाद का उदाहरण है। पाणिनि (6।2।195-सोरवक्षेपणे) के अनुसार सु के साथ तत्पुरुष समान केवल निन्दा के अर्थ में अन्तादात्त हो सकता है। परन्तु यहाँ अन्तादात्त होते हुए भी यह प्रशंसा के अर्थ में वै. स्व. स., पृ. 152

मनुष्यान् वाजसनेयिप्रातिशाख्य 1।111-एकपदे नीचपूर्वः सयवो जात्यः। जब एक ही पर में अनुदात्त स्वर के अनन्तर आने वाले यकारान्त, वकारान्त संयुक्ताक्षार के स्वर पर स्वरित चिन्ह हो जात्य स्वरित होता है।

नेनीयते निरन्तर ले जाता रहता है, मही-अभ्यर्थम् इतस्ततो नयर्ति √नी यङ्, लट् प्र.पु.एक.।

हृत्प्रतिष्ठम् मही.-हृदि प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य तत्, हृदेव मन उपलभ्यते। यहाँ बहुब्रहि समान होते हुए उत्तरपद का आद्याक्षर उदात्त होना अपवादात्मक है-(पा. 6।2।199 पर कारिका-परादिश्च परान्तश्च...)

अजिरम् मही.-जरारहित बाल्ययौवनस्थकविरेषु मनसस्तदवस्थत्वात्

जविष्ठम् उ.-अतिशयेन गन्तृ, मही.-अतिवेगवत्, न वै वातात्किञ्चना-शीयोऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोस्ति इति श्रुतेः।

●●●●

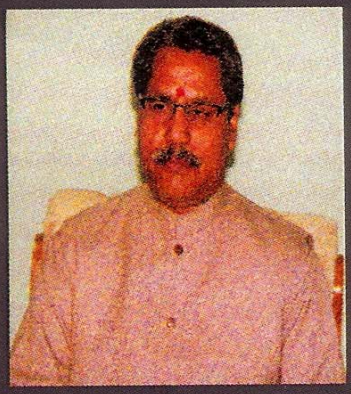

प्रो. योगेश चन्द्र दुबे

जन्म : 1 मार्च, 1960, ग्राम–मैनसिल (गुलजारगंज) जौनपुर (उ.प्र.) के यशस्वी माता-पिता–श्रीमती सावित्री देवी–पं. श्री वंशराज दुबे के आँगन में पल-बढ़कर बड़ा हुआ।

शिक्षा : एम. ए., डी. फिल्., डिप् (लिंग्विस्टिक्स), डी. लिट्. (मानद)

प्रकाशित ग्रंथ : (1) रामायणमंजरी का साहित्यिक अनुशीलन, (2) सूक्ति सुधा, (3) बीसवीं शती के प्रमुख संस्कृत महाकाव्यों में चित्रित भारतीय स्वाधीनता संग्राम, (4) ग्राम्य गीतांजलि–(गीत काव्य) (5) हनुमानधारा (खण्डकाव्य), (6) रामकथामंदाकिनी (शोध-निबंध संग्रह), (7) ईशावास्योपनिषद् (सारस्वती टीका), (8) भाषाविज्ञान की रूपरेखा, (9) विकलांग दर्शन, (10) महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य जी का संस्कृत वाङ्मय को अवदान।

अध्यापन : सन् 1987 से संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अध्यापन यात्रा प्रारंभ कर महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.) में यशस्वी शिक्षक के रूप में विख्यात होकर जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ. प्र.) में 1 अगस्त 2001 से संस्कृत आचार्य एवं विभागाध्यक्ष तथा कला संकाय के अधिष्ठाता के रूप में पदस्थ।

प्रशासनिक अनुभव : कुलपति, प्रति कुलपति, कुलसचिव, अधिष्ठाता, विभागाध्यक्ष, प्रभारी आचार्य पुस्तकालय, मुख्य कुलानुशासक, छात्र कल्याण अधिष्ठाता एवं शोध निदेशक आदि विभिन्न शैक्षणिक एवं प्रशासनिक पदों पर कार्यानुभव।

पुरस्कार : अलंकरण : साहित्य कला शिरोमणि, साहित्य महोपाध्याय, अवध भारती भूषण, तुलसी भारती समलंकरण, कवि रत्न, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक सम्मान, राष्ट्रीय शिक्षा रत्न, पूर्वांचल विद्वद्-रत्न, अक्षय गौरव सम्मान, साहित्य रत्नाकर, शताब्दी सम्मान, हेल्प यू अवार्ड, उ.प्र. रत्न सम्मान आदि।

सम्प्रति : कुलपति, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

स्थायी निवास : 'सारस्वतम्' संत कबीर मार्ग, जानकीकुण्ड, चित्रकूट (उ.प्र.) पिन-210204

मोबाइल : 09452032221, 07509687119

ई-मेल : profyogeshdubey@gmail.com.